UNIVERSAL LIBRARY
OU_182367
UNIVERSAL LIBRARY

OUP—24—4-4-69—5,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81 N14R Accession No. H4216

Author नागर, देवप्रताप

Title रात अँधेरी सागर गहरा 1963

This book should be returned on or before the date last marked below.

रात अँधेरी सागर गहरा

(काव्य–संग्रह)

कृतिकार

दवे प्रताप नागर

भूमिका

डा. हरिवंश राय बच्चन,

एम. ए., पी एच डी. (कैन्टब)

रसराज-प्रकाशन

कानपुर

आगामी कृति –
ओ अभागे प्राण !
(काव्य)

प्रकाशक –
विष्णुदर्शन
र स रा ज – प्र का श न
८४/११४, कारबालो नगर,
का न पु र

सर्वाधिकार लेखकाधीन

मूल्य ३) रुपये

मुद्रक –
हीरालाल दीक्षित
संचालक –
मु क्ता प्रि ट र्स
६४/५३, सदर बाजार,
का न पु र

कला के पारखी

आदरणीय श्री सीताराम जी जैपुरिया एम. पी.

(सदस्य, राज्यसभा)

को

सादर

तुम मुखर होते मुझे –
अनुभूति जब पुचकारती है।
काव्य मेरा, शब्द में –
केवल तुम्हारी आरती है।

भूमिका

मुझे यह जान कर बड़ी प्रसन्नता है कि श्री देवे प्रताप नागर का प्रथम काव्य–संग्रह 'रात अँधेरी सागर गहरा' के नाम से प्रकाशित हो रहा है। उनका यह आग्रह है कि उसकी भूमिका मैं लिखूँ। इस रूप में मेरा यत्किंचित नाम अपनी कृति के साथ सबद्ध करने के लिये मैं उनके प्रति आभारी हूँ।

श्री नागर से मेरा प्रथम परिचय कई वर्ष हुए कलकत्ते में हुआ था, तभी उनकी रचनाओं को सुनने का भी अवसर मुझे मिला था। जहां तक मुझे स्मरण है उन्होंने अपनी हिन्दी ग़जलें सुनायी थीं। हिन्दी गजलों के प्रति मेरी सहानुभूति अधिक नहीं रही है। उनकी सफलता को मैं सन्देह की दृष्टि से देखता रहा हूँ। फिर भी हिन्दी में ग़जल को अपनाने के प्रयत्न बराबर होते रहे हैं। खड़ी बोली पद्य के लिये उर्दू बहरों को अपनाने की सिफारिश पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने की थी, एक समय निराला तक उर्दू बहरों की ओर आकर्षित हुए थे और उन्होंने कई ग़जले लिखी थी, आज के बहुत से नवयुवक कवि ग़जल लिख रहे हैं – विशेषकर वे जो कवि सम्मेलनों के द्वारा जनता के सम्पर्क में आते है। पुराने प्रयत्नों से नयी उपलब्धियों की तुलना करता हूँ तो हिन्दी ग़जलों के विकास से असन्तुष्ट होने का कारण नही देखता। यदि यह विधा विकसित होती गयी तो हिन्दी को क्या दे जायेगी इस पर विचार करने का स्थान यहाँ नहीं है। नागर के ही कुछ शेर इस विकास के चरम – बिन्दुओं का संकेत करने के लिये पर्याप्त हैं :–

वासना प्रेम को न छलती तो
प्रेम वरदान बन गया होता।

\+ + +

भक्ति में याचना न होती तो
भक्त भगवान बन गया होता।

भाषा की सफाई, मुहावरेदानी, प्रवाहमयता, उक्ति – चमत्कार, अर्थ – संकेत आदि ग़जल के गुण इन पंक्तियों में अपने आप बोलते हैं।

प्राय: ऐसा देखा जाता हैं कि नये कवि किसी एक विधा को पकड़ कर चलते हैं और उसमें अधिकार अथवा विशिष्टता प्राप्त कर लेने पर ही अन्य विधाओं की ओर हाथ–पाँव फैलाते हैं। मुझे ऐसी प्रत्याशा थी कि नागर भी अपने को हिन्दी ग़जलों तक ही सीमित रखेंगे। पर उन्होंने ऐसा नहीं किया; उन्होंने गीत भी लिखे और मुक्तछन्द में भी कुछ प्रयोग किये। गजलों की कुछ खूबियाँ हैं तो उनकी कुछ खामियाँ भी हैं जिनके कारण उर्दू कविता का एक बहुत बड़ा भाग कृत्रिम, संकीर्ण और निर्जीव हो गया है।

मुझे प्रसन्नता है कि नागर के जागरूक कवि ने इस खतरे को पहचाना है और अपने को उसका शिकार नहीं होने दिया। यही बात मैं हिन्दी कविता के लिये चाहता हूँ। गजल भले ही एक विधा रहे। जीवन की कुछ अभिव्यक्तियाँ शायद ग़जलो में ही अधिक निखर कर आ सकें, पर बहुत कुछ ऐसा भी है जो ग़जलों के कूज़े या कूचे मे भी, न समा सकेगा।

जो कवि लेखन का यह आदर्श रखता हो कि :—

लिखूँ कि लक्ष्य पा सकूँ।
लिखूँ कि जगमगा सकूँ।
लिखूँ कि इस निशीथ में
नया विहान ला सकूँ।

सृजन हिलोर भर उठे।
लिखूँ कि सप्त-स्वर उठे।
लिखूँ कि मुक्त विश्व हो,
लिखूँ कि युग निखर उठे।

उसे अभिव्यक्ति का कोई अधिक व्यापक माध्यम चुनना ही था। यहाँ नागर के गीतों की ओर ध्यान जाता है।

पिछला दशक गीतों के लिये बहुत अच्छा समय नही रहा। ऐसा नही है कि इस अवधि में गीत लिखे नही गये, पर गीतों को अपदस्थ करने को बहुत कुछ लिखा गया और तुलना में गीतों की वकालत करने को बहुत कम। एक तरह से आवश्यकता भी नहीं थी। गीत आधुनिक हिन्दी कविता की एक स्वीकृत विधा है, उसकी परम्परा साहित्य मे ही नही जीवन मे भी व्याप्त है। आधुनिक हिन्दी कविता की सबसे बड़ी उपलब्धि गीतों मे ही हुई है। जो जाना-माना-जमा है, उसे जनाने, मनाने या जमाने को शोर मचाने की जरूरत नही थी। हाँ, गीतों के आलोचको को सचेत रहने की आवश्यकता थी; उन्हें देखते रहना चाहिये था कि गीत का विकास किस दिशा मे हो रहा है; यदि वे प्रवृत्तियाँ स्वस्थ थी तो उन्हे उनको प्रोत्साहन देना था, उनकी ओर जनता का ध्यान आकर्षित करना था; यदि उनमें ह्रास के लक्षण प्रकट हो रहे थे तो उन्हें रोकना था। उनकी ओर उँगली उठानी थी। यह सब कुछ नही हुआ— कारण गहरे हैं, और गीत अपनी गति से आगे बढ़ते रहे। गीतों के पक्ष में जो सब से बडी दलील दी जा सकती है वह यह है कि उनका सम्बन्ध मानव की उस रागात्मक प्रवृति से है जो बौद्धिकता के कठोर से कठोर आक्रमण के बाद भी अपने स्थान से अडिग है। बौद्धिकता हमे नया सबोध दे, हमें नयी अभिव्यक्ति कराये, पर वह रागात्मकता का मुख सर्वथैव बन्द करा सके, ऐसा सम्भव न होगा। जग—जीवन से रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर मुँह खोलने वाले सदा रहे हैं, सदा रहेंगे। गीत की जड़ें मजबूत हैं। विकासवादी के लिये ह्रास भी विकास के क्रम में आता है। हिन्दी गीतों का भी क्रमशः विकास हो रहा है। उसके परिवर्तित रूपों के प्रति हमे सचेत होने की आवश्यकता है। नयी कविता के जोड़ पर नव—गीतों की चर्चा चल पड़ी है। अनुकरण अच्छा नहीं होता, पर नवीनता के प्रति सचेत होना अच्छा लक्षण है।

नागर के गीतकार का विकास इन्हीं पिछले दस बरसों में हुआ हैं जिसमें गीतों और गीतकारों को बड़े विरोध का सामना करना पड़ा है।

प्रस्तुत संग्रह की 'चिन्तन', 'प्यार से परिचय नही था' और 'नयी कलम से' शीर्षक रचना में वे गीतों के प्रति गम्भीर आशा तथा गीतकार के आत्मविश्वास की घोषणा करते है।

गीत क्या मेरे लिये तो एक आँचल है कि जिसमें
मैं दुखी संसार के आँसू छिपाता।

\+ + +

गीत कुटियों में खिले हों या कि महलों से मिले हों
विश्व का सुख दुख बँटाना जानते हैं।
हाथ सूली पर जड़े हों याकि घूंघट पर पड़े हों
आदमी के काम आना जानते है।
ज्ञान के मत पाश डालो, तर्क का घेरा उठालो
कल न कहना गीतमय संसार से परिचय नहीं था।

\+ + +

बीन क्यों तेरी रुआँसी, कंठ सूखा, श्वास प्यासी।
यह जवानी, यह उमगे, यह अंधेरा, यह उदासी।
तोड़ दे सब पाश तम के, तू दिखा जौहर कलम के।
तू चमक ऐसे कि जैसे पूर्णिमा का चांद चमके।
ऐ सितारों की सहेली, एक लघु मुस्कान तेरी
सौ बहारों से बड़ी है।

खडी बोली एक समय लक्कड़तोड़ भाषा समझी जाती थी। गीत क्या, वह पद्य के भी योग्य न समझी जाती थी। साठ बरसों के अभ्यास के बाद भी अभी उसमे गीतोपयुक्त मार्दव प्रांजलता नही आ सकी। उसे गीतोपयुक्त बनाने के लिये गीतकारों ने बहुत से प्रयोग किये हैं। नागर जागरूक कलाकार हैं और उन्होने सभी तरह के प्रयोगों का लाभ उठाया है।

उर्दू का प्रवाह, भक्तिकाल के गीतों की सरलता, ग्राम-गीतों का ध्वनि-सौन्दर्य, छायावादी गीतों की गरिमा – सब मिल जुल कर, उन्हें गीतों का जो भाषा–माध्यम प्रदान करते है, उसमे बडी मनोज्ञता है और उसके विकास की बड़ी सम्भावनायें है।

इस मनोज्ञता की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि, मेरी राय में, 'चैत को यह अलसायी रैन' शीर्षक कविता है। चित्र और ध्वनि का ऐसा सानुपातिक शृंगार किसी मार्मिक अनुभूति का साक्षी बनकर ही सम्भव होता है। अन्त में तो मेरे कवित्वहीन नाम को भी उन्होंने ब, च, न, अक्षर ध्वनियों का वाता–वरण बना सहज रूप से खपा दिया है :–

नयन निर्झरिणी से छवि सींच,
खड़ा मैं जीवन मरु के बीच,
देखता चन्दरिमा की ओर
अधूरी अँगड़ाई को खींच–
गा रहा हूँ 'बच्चन' का गीत,
'तुम्हारे नील झील से नैन।'

इस संग्रह में तीन कवितायें मुक्तछन्द में भी हैं। नागर ने लयात्मक मुक्त-छन्द का ही प्रयोग किया है। यह बात मेरे मन की है कि छन्दबद्ध कवितायें लिखने वाले मुक्तछन्द के द्वारा भाव–विचारों की सफल अभिव्यक्ति की सम्भावनाओं में भी विश्वास रक्खें। जीवन में आज जितनी विविधता है उसमें कवित्व पद्य से गद्य तक अनेक रूपों में व्यक्त हो सकता है। गद्य–काव्य कोई नया नामकरण नहीं है। काव्य का क्षेत्र बढ़े तो कवि को प्रसन्न हीं होना चाहिये – 'ज्यों बड़री अखियान लखि अँखियन को सुख होत'। नागर के मुक्त छन्दों में भी गीतात्मकता है, यह सहज ही देखा जा सकता है।

संग्रह में विषयों की विविधता कम नहीं है। हम जिस युग में जी रहे हैं उसमें भाव–प्रवण व्यक्ति विभिन्न भाव–विचारों का खिचाव अनुभव करता है। एक अवसर यदि उसे अपने मे डूबने का मिलता है तो दूसरा समाज मे अपने को डुबाने का, एक प्रकृति के प्रति आकर्षित होने का तो दूसरा मानवता के प्रति समर्पित होने का, एक कला को कला के लिये समझने का तो दूसरा कला को जीवन की सेविका मानने का। नागर ने इन सब खिचावों का अनुभव किया है और उन्हें वाणी दी है। वे अपनी विविधता के प्रति सचेत है :–

मधु ऋतु नाज़ करे तो मेरे
गीतों की बगिया को देखे।

नागर के गीतों की बगिया में तरह–तरह के फूल हैं। फूल हैं तो काँटे भी हैं। फूल मन को लुभाते है तो काँटे दामन थाम लेते है; कभी कभी चरणों में चुभते भी हैं पर इनके भय से मैं उनकी रस–रागमयी बगिया में विचरण करना नहीं छोड़ सकता। इन काँटों में कुछ लोग नागर की अपरिपक्वता देखेंगे। मैं उनकी परिपक्वता में उनके विकसित होने की सम्भावनायें देख रहा हूँ। एक जगह रुकने का क्षेत्र न जीवन है और न काव्य। मैं चाहता हूँ कि नागर का जीवन भी गतिमान हो, उनका काव्य भी।

मैं नागर के कवि के विकास को बड़ी रुचि और ध्यान से देख रहा हूँ।

१३ विलिंगडन क्रिसेंट
नई दिल्ली –११
८–३–६३

डॉ० बच्चन

अपनी ओर से

पिछले दशक की मेरी कतिपय प्रमुख रचनाओं का संकलन आपके समक्ष प्रस्तुत है। जीवन संघर्ष ने मुझे जब जहाँ जिस रूप में चुनौती दी, मैंने एक साहसी योद्धा की भाँति सदैव उसका अभिनन्दन किया हैं, नतमस्तक होकर नहीं अपितु वीरोचित स्वाभिमान के साथ अपने गर्वोन्नत ललाट को थोड़ा और समुन्नत करते हुए और आत्म विश्वास की यही झलक आपको ' रात अँधेरी सागर गहरा ' में यत्र तत्र सर्वत्र सुलभ होगी।

सृष्टि में अपने आसपास मुझे जो कुछ जैसा दिखा, अपने 'कैनवेस' पर मैंने उसका हूबहू चित्रांकन करने का प्रयास किया है। अपनी कला को बनावट का बाना पहनाना मुझे अभीष्ट नही क्योंकि एक तो बनावट से मुझे अपने व्यक्तिगत जीवन में भी बेहद घृणा है, दूसरे कलाकार के जीवन में जहाँ बनावट आयी नही कि उसका 'अहम्' आत्मघात कर लेता है। ईमानदारी के साथ अपनीं कला के सँग सँग जीवित रहना कलाकार का दुर्लभ गुण है और जहाँ तक सम्भव हो सका है, इस ईश्वरीय गुण से मैंने रक्त का नाता स्थापित करने की चेष्टा की है। अपने काव्य-सर्जन की विभिन्न उपलब्धियों पर मैं फिर कभी प्रकाश डालूंगा, अभी तो इसकी परख आपके रस-पिपासु हृदय ही को करनी है।

आभार प्रकट करता हूँ देशव्यापी अपने उन तमाम शुभचिन्तकों, मित्रों, परिचित और अपरिचित प्रशंसकों के प्रति जिनकी शुभाकांक्षाओं से मेरे कवि-जीवन को काफी बल मिला है। ऋणी हूँ जैपुरिया बान्धव श्री सीताराम जी जैपुरिया तथा श्री राजाराम जी जैपुरिया के प्रति जिनसे मुझे पारिवारिक सदस्यों जैसी आत्मीयता उपलब्ध हुई है तथा जिन्होंने मेरी कला का समुचित समादर किया है। कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ अपने अनन्य शुभेच्छुक श्री एम० एल० बागला के प्रति जिनका स्नेहशील निर्देशन मेरे जीवन-निर्माण में सहायक सिद्ध हुआ है।

साथ ही साथ प्रणाम करता हूँ अपने अग्रज-तुल्य कलकत्ते के लोकप्रिय मासिक 'आदर्श' के संस्थापक श्री रामदुलारे जी विद्यार्थी को जिनको एक अभिभावक के रूप में पाकर मैं गौरवान्वित हुआ हूँ।

मेरी कला आप सबकी हृदयहारिणी बने-ऐसी आकांक्षा है।

पुनः भेंट की प्रत्याशा में -

होलिकोत्सव संवत् २०१६
श्रम कल्याण विभाग
स्वदेशी काटन मिल्स कं० लि०
जुही, कानपुर

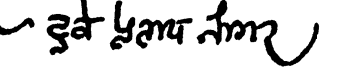

क्रम

नयी पीढ़ी १
रात अँधेरी सागर गहरा ३
कला का मोल ५
तुम्हारे द्वार आ रहा हूँ ७
कल्पना सत्य कर गया कोई १०
चौमासे की रात ११
मैं समाधान बन गया होता १४
अभी कुसुम किशोर है १५
निशा ने पहना दी गलबाँह १७
ये उन्मन मन, ये खिले नयन १९
दूज ने किया चाँद का मोल २१
ऐसा भी क्या मोह २३
कल्पना के गगन में २५
दर्शन देकर नींद चुराली २७
मैं तुम्हारे प्राण की झंकार २९
भाग्य ! ३३
मन विलग होता नहीं है ३५
ओ निशा–नयनी ! ३७
मैंने तो वैसे ही तुमसे ३९
यदि तुम भी मन में खिलो ४१
मैंने गीत पढ़ा तो ४३
बिदा लेकर तुमसे जो चला ४५
न देखो मेरे कवि की ओर ४७
यदि तुम चाँद न होते ४९
चैत की यह अलसायी रैन ५१
यौवन बनकर तुम न मिलो तो ५३
कोलाहल से दूर बहुत हूँ ५५
चिन्तन ५७
प्यार से परिचय नहीं था ५९
ज्योति – विहग ६१
शेष उजाला मैं दे दूँगा ६३
नयी कलम से ६५
जय भारत जय भारत माता ६७
एक हिमालय के हम बेटे ६९
तुम खिले क्या खिला मिलन जैसे ७४
यदि न मिलते तुम ७५
दुनिया में लाने वाले ७७
प्रेरणा के प्रसून कुम्हलाये ८२
जन्म-गाँठ-एक प्रतिक्रिया ८३
जवान हसरतें - बूढ़े दिमाग ८७
आभार ९३

नयो पीढ़ी

१

भाल पर कुंकुम लगाये, आज श्रम की लौ जगाये,
लो हिमालय की धरा को दो भुजाओं पर उठाये –
सूर्य बनने को अड़ी है ।
यह नयी पीढ़ी खड़ी है ।

यह जहाँ हँस दे सहर है, यह जहाँ रूठे कहर है।
पी रही चुपचाप फिर भी आज दुनिया का जहर है।
आँख खुलती गीत ढलते, आँख मुँदती दीप जलते।
भूल से यदि यह सिसकती सैकड़ों सावन पिघलते।

यह अमावस में दिये की लौ सरीखी जगमगाये
ज्योति की कंचन-लड़ी है।
यह नयी पीढ़ी खड़ी है।

बाँसुरी के बोल जैसी, भाँवरों के ढोल जैसी।
गाँव की क्वाँरी धरोहर कंठ के हिंडोल जैसी।
गुनगुनाती प्रेम के तट, खिलखिलाता प्राण पनघट,
रीझता कोई छली तो खीझ कर कहती कि 'चल हट'।

जो प्रथम गुंजार ही में विश्व को बेसुध बनाये
गीत की पहली कड़ी है।
यह नयी पीढ़ी खड़ी है।

यह सुनहली बालियों में, यह रुपहली डालियों में—
यह पसीना बन पनपती है खड़ी हरियालियों में।
बादलों में नृत्य करती, बिजलियों से माँग भरती,
पंथ के संघर्ष से यह जूझ कंचन सी निखरती।

स्वेद में इसके समूची सृष्टि सचमुच डूब जाये
साधना इसकी बड़ी है।
यह नयी पीढ़ी खड़ी है।

आरती सूरज उतारे, अर्घ्य देता चाँद द्वारे।
वायु खुद चाँवर डुलाती, वन्दना गाते सितारे।
स्वेद से रूखी नहीं है, शक्ति की भूखी नहीं है।
यह भले मुरझा चली हो पर अभी सूखी नहीं है।

यह अमरता की पुजारिन मृत्यु से जो भय न खाये—
जन्म की वह फुलझड़ी है।
यह नयी पीढ़ी खड़ी है।

रात अँधेरी सागर गहरा

२

रात अँधेरी सागर गहरा, कोलाहल है ज्वार का।
बच निकला तो तेरा हूं फिर डूबा तो मंझधार का।

चैत लगे तो चन्दा फूले, बादरवा आषाढ़ से।
रसिया सावन भरे हिंडोला गुलमेहँदी की बाढ़ से।
कातिक में फूले पुनवासी, सरसिज फूले क्वाँर में।
बारहमास जवानी फूले बिरहा के त्यौहार में।

माटी गीली, हवा हठीली, दुश्मन मौसम प्यार का।
खिला कभी तो तेरा हूं फिर मुरझा तो पतझार का।

आँगन में सूनापन डोले, पायल बिलखे पाँव में।
सारी रात पपिहरा तरसे ज्यों बदरा की छाँव में।
भरी कलाई कङ्कन टूटे, बिंदिया छूटे भाल की।
कैसे तेरे लिये उतारूं मैं चन्दा की पालकी?

पनघट प्यासा, मेघ रुआँसा, कम्पन मन के तार का।
मैं गूंजा तो तेरा हूं फिर सिसका तो बौछार का।

रूप निहारूं तो तन काँपे, मन काँपे ध्रुव-ध्यान में।
घूँघट में बीजुरिया कौंधे, तक्षक है मुस्कान में।
अधरा पर बाँसुरिया बरजे, पुरवा गरजे साँस में।
नयी चुनरिया रह रह उरझे नागफनी की फाँस में।

पथ अनबूझा, दिशा अजानी, पाहुन तेरे द्वार का।
बांह गहे तो तेरा हूं फिर त्यागे तो संसार का।

देहरी घेरे खड़े लुटेरे, बस्ती है बटमार की।
घर के भीतर खुली तिजोरी साँकल टूटी द्वार की।
कब तक बाँधू नेह जतन से मैं आँचल के छोर में?
मुझ दुखिया की कौन सुनेगा चौराहे के शोर में?

देह शिथिल, नयना निंदियारे, परदा है अँधियार का।
मैं जागा तो तेरा हूं फिर सोया तो कर्त्तार का।

कला का मोल

३

तुम्हारे विश्व में मेरी कला का मोल क्या होगा ?

पुजारी हूँ कला का मैं, अपरिचित नाम है मेरा।
परिश्रम जिन्दगी मेरी, मरण विश्राम है मेरा।
गिरा दुर्भाग्य के छल पर, उठा संघर्ष के बल पर,
दुखी इन्सान को राहत दिलाना काम है मेरा।

यही अपराध ऐसा है जिसे दुहरा रहा हूँ मैं।
यही कुछ राह ऐसी है कि चलता जा रहा हूँ मैं।

प्रगति को पंथ दिखलाते सदा प्रतिरोध के झोंके
हृदय के क्षीण कम्पन पर थमा हिंडोल क्या होगा ?

नयन में सिन्धु का मन्थन, प्रलय की प्राण में ज्वाला।
हृदय में प्रेम का जादू, अधर पर हास्य की हाला।
मधुर संगीत से करता प्रलय के वेग को कुंठित,
खड़ा मैं रूप के तट पर अनोखा बाँसुरीवाला।

पला परिवर्तनों पर जो सदा विध्वंस से खेला।
चुनौती दे रही उसको खड़ी निर्माण की बेला।

तुम्ही से मिल सका प्रश्रय न मेरी लेखनी को जब
विषैले पात्र में मधु का रसायन घोल क्या होगा ?

मधुप का माधवी गुजन न कुछ दुख–दर्द हर पाया।
कलंकी चाँद की क्षण भर न मैं मनुहार कर पाया।
कली का रेशमी यौवन, भला क्या ढक सकेगा तन,
किरन की चितवनों से क्या किसी का पेट भर पाया ?

स्वयम् की हर विवशता का बहुत कुछ ध्यान है मुझको।
मनुज के इन अभावों पर सदा अभिमान है मुझको।

मुझे व्यवहार से रुचिकर बहुत कुछ कल्पना लगती,
कला के इन भुलावों में निरर्थक डोल क्या होगा ?

भले तुम प्रेरणा मत दो हृदय का हास मत छीनो।
अपरिचित पंथ पर गति का अथक विश्वास मत छीनो।
सृजन के इन क्षणों में भी, अचिर आकर्षणों में भी,
मुझे मत तृप्ति दो लेकिन अधूरी प्यास मत छीनो।

हृदय के पारखी हो तो हृदय के गान में डूबो।
किसी जलबिन्दु पर तैरो, किसी मुस्कान में डूबो।

धरा के लाड़ले बेटों, भरो मनुजत्व में करुणा,
किसी पाषाण के सन्मुख हृदय पट खोल क्या होगा ?

तुम्हारे द्वार आ रहा हूं

४

तुम्हारे द्वार आ रहा हूँ ।

तुम नवविहान में
दिग्वसना की माँग भर रही हो।
तुम रश्मिरथी का
कुंकुम से शृंगार कर रही हो।

तुम उदयाचल पर
इसी भाँति से मेरा पंथ निहारो,
मैं लिए करों में
किरणों की गलहार आ रहा हूँ ।

तुम्हारे द्वार आ रहा हूँ ।

तुम सान्ध्य गगन में
अस्ताचल का चित्र आँकती हो।
तुम सोनजुही सी
चन्दरिमा के साथ झाँकती हो।

तुम नील वसन पर
टाँको संगिनि, सलमे और सितारे,
मैं लिए निशा का
नीलम शयनागार आ रहा हूँ।

तुम्हारे द्वार आ रहा हूँ।

तुम निर्झरिणी में
नील कमल के पंख खोलती हो।
मैं समझ गया तुम
मलयागिरि की ओर डोलती हो।

तुम बिखराती चलरही,
धरा पर फागुन की मादकता,
मैं लिए नयन में,
सावन की बौछार आ रहा हूँ।

तुम्हारे द्वार आ रहा हूँ।

हर साँस थक गयी,
मैं भी थक कर चूर हो गया हूँ।
मैं देख देख कर तुम्हे
स्वयम् से दूर हो गया हूँ।

तुम आँधी बनकर मिलो
पंथ को भूचालों से भर दो,
मैं लिए हृदय में
सप्त-सिन्धु का ज्वार आ रहा हूँ।

तुम्हारे द्वार आ रहा हूँ।

यह आत्म–विसर्जन
पथ का पश्चाताप बन गया है।
अब दुर्दिन मे
सौन्दर्य तुम्हारा शाप बन गया है।

तुम पूजन के पाषाण
प्राण के सोये गीत जगा दो,
मैं लिए कंठ में
नव–रस की रसधार आ रहा हूँ।

तुम्हारे द्वार आ रहा हूँ।

यह मृग-मरीचिका
जीवन का ध्रुव-ध्यान बन गयी है।
यह शब्द–चयनिका
कवि का मङ्गल–गान बन गयी है।

तुम भरो चिरन्तन प्राण
कला की मटमैली प्रतिमा में,
मैं पद–वन्दन मे लिए
पुष्प – संभार आ रहा हूँ।

तुम्हारे द्वार आ रहा हूँ।

कल्पना सत्य कर गया कोई

५

कल्पना सत्य कर गया कोई ।
स्वप्न बनकर बिखर गया कोई ।

प्राण का गीत, श्वास का गुंजन,
कंठ में लोच भर गया कोई ।

प्रेरणा के क्षणिक भुलावे मे,
तूलिका में उतर गया कोई ।

लक्ष्य की कामना न की मैंने,
पंथ गतिमान कर गया कोई ।

अर्घ्य मेरा न आरती मेरी,
अर्चना में निखर गया कोई ।

थक गयी जब उपासना मेरी,
वासना बन बिखर गया कोई ।

शून्य मन का क्षितिज न भर पाया,
इन्द्रधनु बन सँवर गया कोई ।

मृत्यु की इस निशीथ मे 'नागर'
जन्म की मांग भर गया कोई ।

●

चौमासे की रात

६

यह भादो की रैन अँधेरी, यह वैरिन बरसात रे।
आह बिदेसी, कैसे काटूं चौमासे की रात रे?

नील गगन का चन्दा सूखा, सूख गयी पुनवासी रे।
रास बिना रो रहा कन्हैया, राधा खड़ी रुँआसी रे।
वन सूखे, गोधन-थन सूखे, सूखा ताल-तलैयों मे,
ये दो नैना कभी न सूखे बरसें बारहमासी रे।

तन करील काँटो से छलनी, मन पीपल का पात रे।
सौ सौ घाव सहूँ अब कैसे बुंदियन के आघात रे?

आँचल से फट गयी चुनरिया, कङ्गन हटे कलाई से।
बदरा से बरसे चिनगारी, धुँआ उठे पुरवाई से।
कालिन्दी–तट डसे कालिया, गोकुल गाँव लुटेरों का,
सब जमुना हो गयी विषैली विषधर की निठुराई से।

पनघट का क्या करूँ भरोसा, बहकी ऐसी वात रे।
सारा मानसरोवर सूखा, सूखे सब जलजात रे।

माँग भरूँ तो बिंदिया रूठे, कजरा छूटे पानी मे।
ओछी पड़ पड़ जाय उमर की अँगिया भरी जवानी मे।
पगडंडी सी पड़ी जिन्दगी बीच कुँए औ खाई के,
टप टप टपके नीर बिदा मे, आग लगे अगवानी मे।

किसके रामदुआरे डोलूँ, खोलूँ मन की बात रे?
संगसखा सब ऐसे बिछुरे ज्यों पतझर के पात रे।

धर्म ध्यान जप जोग किये सब सह सह जगत हँसाई रे।
मलमल देह नहायी गङ्गा मिटी न मन की काई रे।
ऐसी दहके सेज कि जैसे धूनी जले अलावों की,
नस नस बींधे काम कि कस कस मारे बान कसाई रे।

अँसुवा बन बन हृदय पसीजे, छीजे सारा गात रे।
समय–अहेरी छिन छिन लूटे साँसो की सौगात रे।

सास कहे यह विष की भेली, जेठ कहे कुलबोरी रे।
ननद जिठानी ताने मारे, देवर कहे छिछोरी रे।
सौत निगोड़ी काटन दौड़े, चुगली करे जमाने से,
पल में दागी हुई इसी घर हाय चुनरिया कोरी रे।

कानाफूसी करें पड़ोसी, कोसें मेरी जात रे।
पिय बिन पूछनहार न कोई हाय टके की बात रे।

मन माँगे कंचन की गठरी, तन यौवन का प्यासा रे।
पलक मारते बीते पल में जीवन का चौमासा रे।
चन्दन डोले चढ़ी दुल्हनियां काँधे चार कहारों के,
हाड़ जरे ज्यों जरे लाकरी, केस जरे जस घासा रे।

क्या भाँवर, कैसा गठबन्धन, क्या गौने की बात रे?
दुलहिन तो अधराह लुट गयी, बिखर गयी बारात रे।

मैं समाधान बन गया होता

७

दर्द यदि गान बन गया होता ।
अश्रु मुस्कान बन गया होता ।

तुम न सौन्दर्य बन बिखरते तो
विश्व वीरान बन गया होता ।

कंठ में यदि न मधु निहित होता
शब्द विषपान बन गया होता ।

वासना प्रेम को न छलती तो
प्रेम वरदान बन गया होता ।

भक्ति मे याचना न होती तो
भक्त भगवान बन गया होता ।

प्रश्न बन यदि न तुम उभरते तो
मैं समाधान बन गया होता ।

सृष्टि में मृत्यु ही न होती तो
जन्म अपमान बन गया होता ।

प्राण का स्नेह यदि न दूं 'नागर'
जग बियाबान बन गया होता ।

अभी कुसुम किशोर है

८

अभी कुसुम किशोर है ।

विहग, न चञ्चु खोलना, मलय यहाँ न डोलना ।
पिकी, किसी निकुंज से 'कुहू कुहू' न बोलना ।
अभी किरण करुण नहीं, प्रकाश तक तरुण नहीं ।
अभी उदय विहार पर उषा नहीं, अरुण नहीं ।

निशा बहुत भयावनी, दिशा दिशा घनी बनी ।
अनन्त अन्तरिक्ष पर न चाँद है न चाँदनी ।
कभी अथक दुलार में, अथाह अन्धकार में,
किसी अतृप्त तृप्ति से, मधुप, न छेड़ना इसे,

अभी अतृप्त भोर है ।
अभी कुसुम किशोर है ।

अभी उषा न आ सकी, अभी तृषा न जा सकी,
अभी सलज्ज सेज की शिकन न मुस्करा सकी।
अभी दिशा न मोड़ना, अभी न बाँह छोड़ना।
तुम्हे सुहाग की शपथ अभी शपथ न तोड़ना।
अभी अतृप्ति छल रही, अभी उमंग पल रही,
अमर्त्य प्राण–दीप की किरन किरन मचल रही।
व्यथा घनी विरह घना, अभी बिदा न माँगना।
किसी व्यथित विराग से, क्षलभ, न देखना इसे–

अभी अतृप्त भोर है।
अभी किरन किशोर है।

विकल निरीह नभ कुसुम, हरित हुये न वेलि द्रुम।
अतृप्त भू, अतृप्त नभ, अतृप्त मैं, अतृप्त तुम।
अनन्त विश्व–वीथि में कही न मन मुकुल खिला।
विपत्ति व्यंग्य कष्ट के सिवाय और क्या मिला ?
अगाध साध घट गयी, अनन्त आयु कट गयी,
विकास जब हुआ निकट बयार रुख पलट गयी।
किसी विमुक्त चाव में, अतृप्ति मे, अभाव मे,
किसी अतृप्त तृप्ति से, किरन, न बेधना इसे–

अभी अतृप्त भोर है।
अभी कुमुद किशोर है।

प्रसुप्त प्रेरणा बनी, कला बने न निर्धनी,
नवीन पौध के लिए उठा अजेय लेखनी–
लिखूँ कि लक्ष्य पा सकूँ, लिखूँ कि जगमगा सकूँ,
लिखूँ कि इस निशीथ मे नया विहान ला सकूँ।
सृजन हिलोर भर उठे, लिखूँ कि सप्त–स्वर उठे।
लिखूँ कि मुक्त विश्व हो, लिखूँ कि युग निखर उठे।
अजस्त्र स्नेह पी सकूँ, अनन्त आयु जी सकूँ।
किसी व्यथित विरक्ति से, हृदय, न छोड़ना इसे–

अभी अतृप्त भोर है।
अभी कला किशोर है।

निशा ने पहना दी गलबाँह

९

निशा ने पहना दी गलबाँह
चाँद शरमाता ही रह गया।

अरुण ने दिखलाया आलोक,
वायु ने फेंके पथ के शूल।
विहग ने छेड़ा मेघ मल्हार
विटप ने छाया दी अनुकूल।

बाट ने बिखराये बनफूल
बटोही आता ही रह गया।

सुमन की सेज, किरन का कुंज,
मलय के गीत, राग हिंडोल।
अधखिले स्वप्न, अदेखा खेल
कुँवारे घन – घुँघरू के बोल।

कली के घूँघट के पट खोल
मधुप कुछ गाता ही रह गया।

शरद सा यौवन, शशि सा रूप
रेशमी लटें, गुलाबी गाल।
खौलती साँसे, कम्पित देह
अधखुले अधर, उम्र का ख्याल–

खींच कर तुम्हे बाहु में उठा,
लटें सुलझाता ही रह गया।

वायु छू चली व्योम के छोर
धरा ने थामी तम की बाँह।
लहर के गीले–गीले गाल
लता की ठंडी ठंडी छाँह।

धार पर माँझी का एतबार
पार पहुँचाता ही रह गया।

भाग्य की हँसी, समय का फेर,
विश्व का व्यंग्य, दैव की मार।
चिता की चोट, अश्रु के अर्घ्य,
सेज की शिकन, हृदय का प्यार।

सभी कुछ मिला, अन्त मे मनुज
हाथ फैलाता ही रह गया।

ये उन्मन मन, ये खिले नयन

१०

ये उन्मन, ये खिले नयन, ये पुरवैया के झोंके,
क्या आज तुम्हारा साँवरिया फिर आने वाला है ?

नीलम–नभ पर साँवरी साँझ की ओढ़ चुनरिया धानी ।
दूधिया चाँद कर रहा कुँवारी किरणों से मनमानी ।
एकान्त–तटी पर प्राण–तरी से लहरों की अठखेली ।
तुम विद्युत गति से चली जा रही तट की ओर अकेली ।

ये डगमग पग, ये पंथ सजग, ये उड़ता उड़ता आँचल,
क्या आज तुम्हारा यौवन फिर लहराने वाला है ?

बरगद गदराया, झुकी बेरियाँ, महुए भी इठलाये।
काँपते ताड़ की आड़ चाँद का घूंघट खुल खुल जाये।
बाँसो के झुरमुट तले खिंच रही पगडंडी की रेखा।
इस ठाँव नीम की घनी छाँव से प्रिय का गाँव अदेखा।

ये नर्तित तन, ये छूम-छनन, ये बहकी बहकी पायल,
क्या आज तुम्हे यह फागुन फिर बहकाने वाला है ?

क्यों बाट जोहते थकी पुतलियाँ, पावों का श्रम हारा ?
दूभर जीवन हो चला अचानक करुणा ने पुचकारा।
क्या आज मिलन की मादकता अभिशाप नहीं होगी ?
क्या आज प्रेम की आँखमिचौनी पाप नहीं होगी ?

ये सूना मन, एकाकीपन, ये बोझिल-बोझिल जीवन,
क्या आज हृदय फिर पीड़ा को दुलराने वाला है ?

कल्पना-जगत में युग-युगान्त से भ्रमित भावना प्यासी।
ये सान्ध्य-गगन सी कवि के मन पर घिरती हुई उदासी।
सावन-भादो के पंख खोलकर लौट गया चौमासा।
मन के पनघट पर खड़ा रह गया मैं प्यासा का प्यासा।

ये धुन्ध तिमिर, ये अन्धकार में डूबी दसो दिशायें,
क्या आज प्राण का दीपक भी बुझ जाने वाला है ?

दूज ने किया चाँद का मोल

११

दूज ने किया चाँद का मोल
चाँद के मुरझाने के बाद।

दूर घिर रही सिँदूरी साँझ
गहन गिरि शिखरों से अति दूर।
टूटकर छिटक रहे हर ओर
हिमानी किरणों के केयूर।
थकेमाँदे सूरज को देख
व्यथित हो डूब गया दिनमान,
किरण झुक गयी कुसुम की ओर
कुसुम के कुम्हलाने के बाद।

प्रकृति से मुक्त प्रेरणा मिली
सूझ से पाये शब्द पुनीत ।
विश्व के कटु व्यंगों से ऊब
रचा कवि ने जीवन का गीत ।
चिन्तना चौंकी, काँपे पत्र
लेखनी टूट गयी तत्काल,
जगत ने आँका कवि का मोल
समय के टल जाने के बाद ।

गगन पर घिरी अमावस घोर
धरा पर फैला तम का जाल ।
ज्योति से जागे जगमग दीप
प्रभा से पूरित कंचन-थाल ।
वर्तिका काँपी, ढुलका स्नेह –
प्रभंजन का पाकर आवेग,
शिखा को हुआ शलभ से मोह
शलभ के जल जाने के बाद ।

साधना खंडित होते देख
देवता स्वयम् हुआ निष्प्राण ।
गूँजकर शंखः-ध्वनि ने कहा –
बदल दो प्रतिमा का पाषाण ।
आरती उलटी, फेंके फूल,
पुजारिन लौटी उलटे पाँव,
उसी क्षण पिघल गया पाषाण
प्रार्थना ठुकराने के बाद ।

ऐसा भी क्या मोह

१२

ऐसा भी क्या मोह मानिनी, किसी अपरिचित ठाँव का ?
अरी राधिके, तुझे न ठग ले साँवरिया इस गाँव का ।

यहाँ कला की रंगभूमि पर रास रचाना पाप है ।
प्रेम यहाँ कोरी कामुकता, रूप यहाँ अभिशाप है ।
कोई कुंठा घात लगाये श्वासों के हिंडोल मे ।
बहुत बड़ा छल छिपा हुआ है बाँसुरिया के बोल मे ।

सम्हल सम्हल चल इस जल थल पर मचल न इतना बावली,
इस पनघट पर नहीं भरोसा खुद अपने ही पाँव का ।

यहाँ सेज की लज्जा लुटती उच्छृंखल अभिसार पर ।
सुन्दरता सड़ रही यहाँ की किसी घिनौने द्वार पर ।
बहुत सुहाने लगते सबको ढोल यहाँ के दूर से ।
यहाँ करुण वैधव्य झलकता अनब्याहे सिन्दूर से ।

सूख रही है जीवन–जमुना प्रतिपल के गतिरोध पर,
कल कोई अस्तित्व न होगा इस कदम्ब की छाँव का ।

यहाँ पनपते ही मुरझातीं नव–चिन्तन की क्यारियाँ ।
खड़ी फसल को झुलसा देतीं कटुता की चिनगारियाँ ।
पूजित होती नयी लेखनी यहाँ भूख की मार से ।
श्रम का मूल्य चुकाया जाता व्यंगों की बौछार से ।

यश अपयश के डाल हिंडोले मन की राधा झूलती,
पुरवा की हैं कभी थपकियाँ, झोंका कभी पछाँव का ।

यहाँ सत्य का शव उठता है राजनीति के नाम पर ।
यहाँ कला तक बिक जाती है शासन के नीलाम पर ।
लोभ चुनौती देता रहता दर्शन के विश्वास को ।
पापी पेट बदल देता है सदियों के इतिहास को ।

नयी पौध कर रही खुदकशी यहाँ कुटिल आतंक मे ,
बहुत विषैला नागपाश है दलबन्दी के दाँव का ।

कल्पना के गगन में

१३

कल्पना के गगन में खिले तुम जहाँ
गीत बनकर वहीं मैं मुखर हो गया ।

प्राण की वीथियों में छिपी रात दिन
भावना कुछ मुझे गुदगुदाती रही ।
रूप के बादलों की घनी छाँह में
इन्द्रधनु की छटा काँध जाती रही ।
किन्तु मैं तो किसी स्वाति की आस पर
नित्य रटता रहा 'पी-कहाँ, पी-कहाँ',
अश्रु बनकर नयन से ढले तुम जहाँ
तृप्ति बन मैं किसी कंठ में खो गया ।

भाग्य ने कुछ सहारा दिया जब मुझे
प्रीति की वञ्चना से गया मैं छला ।
मुझ विछोही पथिक के लिए विश्व मे
खुल न पाई किसी द्वार की अर्गला ।
किन्तु मैं तो किसी कंठ की गूंज पर
प्राण की भैरवी को सँजोये रहा,
सूझ बनकर हृदय में खिले तुम जहाँ
शब्द बन मैं किसी भाव में सो गया ।

सिन्धु मेरे स्वरों से उलझ काँपता
भेद मेरे हृदय का गगन खोलता ।
भूमि मेरी व्यथा पर विकल घूमती
चाँद मेरी जलन को लिये डोलता ।
किन्तु मैं तो किसी स्वप्न की टोह में
नींद की बाहु में जा हुआ बेखबर,
चेतना बन चले सृष्टि मे तुम जहाँ
बीज मेरी प्रगति के जगत बो गया ।

प्रार्थना बन न पायी कभी फलवती,
प्रेरणा से न पिघला सका प्राण को ।
वन्दना के स्वरों मे सँजोयी व्यथा
बेध पायी नही मूक पाषाण को ।
किन्तु मैं तो किसी के चरण-चिह्न पर
प्रीति की अनबुझी लौ लगाये रहा,
सिद्धि बन तुम मिले साधना में जहाँ
सत्य मेरे मिलन का कलुष धो गया ।

दर्शन देकर नींद चुरा ली

१४

दर्शन देकर नींद चुरा ली
परिचय प्यार हुआ तो क्या है ?

साँझ हुई महकी निशिगन्धा,
भोर हुआ तो बेला फूली ।
मैं ही एक अभागा जिसने
माँगी सेज मिली तब सूली ।
रूप घुला तो बात न पूछी,
देह घुली तो बाँह न थामी ।
साथ रही केवल परवशता,
हाथ रही केवल बदनामी ।

आँख खुली तो सपना टूटा, आँख मुँदी दुनिया ने लूटा,
क्षण भर इन्द्रधनुष यदि मेरा शयनागार हुआ तो क्या है ?

सुमनों में भर कर सुन्दरता,
कलियों में कुछ प्यास जगा दी ।
गन्ध उड़ी तो तुमने मन के
नन्दन-वन में आग लगा दी ।
शशि का लोभ दिखाकर तुमने
सागर को जी भर तरसाया ।
यौवन का दे चन्द्र-खिलौना
राख बना दी कंचन-काया ।

आयु बनी पापों की ढेरी, देह हुई रोगों की चेरी,
यह माटी का रूप हृदय का जड़-शृंगार हुआ तो क्या है ?

भाल लगा सूरज की बिंदिया,
नयनों में यश की उजियाली ।
प्राणों में करुणा के निर्झर,
अधरों पर गीतों की लाली ।
श्वासों में सुधियों के झोंके,
कंठ लिए सुरसरि की धारा ।
मेरे कवि का रूप चुराकर
मोह लिया तुमने जग सारा ।

ज्ञान कभी कुछ काम न आया, जोग लिया तो मन पछताया,
प्यास लिए अधरों पर सारा सागर पार हुआ तो क्या है ?

मधुऋतु नाज करे तो मेरे -
गीतों की बगिया को देखे ।
शशि का गर्व बढ़े तो पहले
मेरी प्राण-प्रिया को देखे ।
कोई पाँव थके तो मेरी
गति मे कुछ चेतनता ला दो ।
सिसके कोई कंठ कहीं तो
पहले प्राण मुझे दुलरा दो ।

जो भी गीत पढ़ूं तुम गा लो, मनभाये तो कंठ लगा लो,
आज विरोधों मे गीतों का राजकुमार हुआ तो क्या है ?

मैं तुम्हारे प्राण की झंकार

१५

मैं तुम्हारे प्राण की झंकार दुनिया जानती है।
हो गया मेरा तुम्हारा प्यार दुनिया जानती है।

चन्द्रमुख की छाँह रहती मोहिनी मुस्कान घेरे।
रूप पीता था तुम्हारा मैं सबेरे ही सबेरे।
दृष्टि थी ऐसी कि सारी सृष्टि पर छायी हुई थी।
देह वह क्या थी कमल की नाल सकुचायी हुई थी।
लाज में डूबे कपोलों पर उषा अलसा गयी थी।
कंठ था ऐसा कि मुझको मूर्च्छना सी आ गयी थी।

छेड़ती जब बीन के तुम तार दुनिया जानती है।
गीत हो उठता स्वयम् साकार दुनिया जानती है।

वे सघन कुन्तल कि गिरि पर साँझ धुंधलाने लगी हो ।
वह चपल चितवन कि जैसे चाँदनी छाने लगी हो ।
वह दमकता भाल जैसे पूर्णिमा भर दी किसी ने ।
वे सिहरते ओठ जैसे बाँसुरी धर दी किसी ने ।
वह हृदय क्या था जहाँ तक कल्पना जाती नहीं थी ।
सिन्धु था ऐसा कि जिसकी थाह मिल पाती नहीं थी ।

हो चुकी तुम सात सागर पार दुनिया जानती है ।
अब निगल बैठी मुझे मँझधार दुनिया जानती है ।

पुण्य था मेरा कि तुम इस सृष्टि मे पायी गयी थी ।
तुम न जन्मी थी, कला की सौत जन्मायी गयी थी ।
साथ मे तुम थी कि मुझको काल का भी भय नहीं था ।
प्राप्त कर लेता स्वयम् अमरत्व मैं, संशय नहीं था ।
तुम सहज उतनी कि जितनी तूलिका मेरी घनी थी ।
गद्य मे तुम थी 'त्रिवेणी', पद्य मे 'कामायनी' थी ।

दे चुकी तुम जो मुझे ऋण–भार दुनिया जानती है ।
मैं चुकाने मे सदा लाचार दुनिया जानती है ।

अब तुम्हारी याद नागिन बन मुझे डसने लगी है।
अब तुम्हारी श्वास मेरे कठ मे फँसने लगी है।
अब तुम्हारा व्यंङ्ग मुझ पर तीर तीखे मारता है।
अब बिदा का पत्र फन फैला मुझे फुफकारता है।
अब तुम्हारी चाह मेरे प्राण खाये जा रही है।
'हम नही' की रट मुझी से लौ लगाये जा रही है।

मैं तुम्हारे मोह की मनुहार दुनिया जानती है।
बन गया हूँ आज हाहाकार दुनिया जानती है।

तुम चली आओ कि मेरी चेतना अकुला रही है।
तुम चली आओ कि मेरी साँस रह रह जा रही है।
तुम चली आओ कि मेरे पुण्य सब खोये हुये हैं।
तुम चली आओ कि मेरे देवता सोये हुये हैं।
तुम चली आओ कि मेरे हाथ मेरा मन नहीं है।
तुम चली आओ कि मेरे वक्ष में धड़कन नहीं है।

आयु होती जा रही है भार दुनिया जानती है।
तुम नहीं तो व्यर्थ फिर ससार दुनिया जानती है।

कामना यह है कि मेरी जब कभी यह देह छूटे,
रिक्त हो सब आयु सहसा तिलमिलाकर श्वास टूटे,
मृत्यु के क्षण भी तुम्हारी छवि दृगों में यों जड़ी हो।
तुम रहो सन्मुख तुम्हारी गोद में वीणा पड़ी हो।
चिर-विदा में एक मङ्गल-गीत बस गाती रहो तुम।
मैं तजूं यह देह मुझ पर स्नेह ढुलकाती रहो तुम।

प्रेम ही तो सृष्टि का है सार दुनिया जानती है।
प्राण, तुम तो प्रेम के आधार दुनिया जानती है।

भाग्य !

१६

भाग्य !
लौटा ले सभी सम्पत्ति
यह ऐश्वर्य, इन सुख–साधनों को
यह अतुल वैभव कि जो मुझसे सहा जाता नहीं है ।
किन्तु लौटा दे मुझे वह वस्तु अनुपम, जो–
न तूने नाम मे मेरे लिखी थी,
पर मुझे जो सृष्टि मे सब कुछ दिखी थी
और अब जिसके बिना मुझसे रहा जाता नहीं है ।
मैं नहीं कहता मुझे तू धर्म दे
क्योंकि वह तो सिर्फ वृद्धों के लिये है
ओर मैं तो चिर–युवा हूँ ।
अर्थ की भी है नहीं तुझसे पिपासा
क्योंकि श्रम पर है अधिक विश्वास मेरा ।
इसलिए बस अर्थ भी है दास मेरा ।
काम का भी है नहीं इतना प्रलोभन
वह मनःस्थिति है, किसी शुभ–कर्म का कारण नहीं है ।
मोक्ष के प्रति भी नहीं आसक्ति मेरी
योग से वह भी सुलभ है पर असाधारण नहीं है ।
वस्तु लौटा दे मुझे वह
जो कि यौवन के प्रथम आशीष सी मुझको मिली थी ।
प्रेरणा के जो सहस्रों
ज्योति–पुंजों सी खिली थी ।

वे प्रतीक्षा से भरी आँखे कि जैसे
मानसर में वायु की लघु–लहरियों से
नील–नीरज की मृदुलतम पाँखुरी खुल सी गयी हो।
वह शिशिर के बादलों सा भव्य मुख–मंडल कि जैसे
क्षीर–सागर में नहाकर चाँदनी धुल सी गयी हो।
वे अधर जो शुष्क होकर थे सदा से चिर–सलज्जित,
बोल तक जिनसे कभी खुलकर निकल पाते नहीं थे।
वह करुणतम कंठ जो आलाप लेता था कभी तो –
धर्म ईश्वर मोक्ष कुछ भी ध्यान मे आते नहीं थे।
वह घरेलू काम–धन्धों से थकी–हारी हथेली
जान पड़ता था स्वयम् सौभाग्य ने मेंहदी रची है।
वह हृदय जो स्वच्छ दर्पण सा लिए प्रतिबिम्ब मेरा
कल्पना से भी परे वह वस्तु थी ऐसी अलौकिक–
जो प्रलय के बाद मेरी सृष्टि मे बाकी बची है।
भाग्य ! मुझसे छीन ले सब पुण्य,
सारी आयु, सब शुभ–कामनायें,
त्याग दूंगा मोह अपनी प्राण–प्यारी लेखनी का
किन्तु लौटा दे मुझे वे नेत्र,
वह मुखड़ा, वही कल–कंठ, वह रूखी हथेली,
वे अधर, वैसा हृदय जिससे कि क्षण भर
उस असुन्दर वस्तु का सौन्दर्य जी भर पी सकूं मैं।
जन्म भर मैंने सहे है क्रूर वज्राघात तेरे
एक क्षण तेरी कृपा से चैन से तो जी सकूं मैं।

मन विलग होता नहीं है

१७

तन विलग कर दे भले ही यह निठुर संसार लेकिन
प्राण ! सच मानो कभी यह मन विलग होता नहीं है।

मानता हूँ प्यार वह कमजोर धागा है कि जिसके
टूटते ही गाँठ पड़ जाती मगर जुड़ता नहीं है।
किन्तु मेरी सब तरफ से चोट खायी जिन्दगी का
रास्ता ऐसा कि जो हर मोड़ पर मुड़ता नहीं है।

बस इसी से सृष्टि मे केवल तुम्ही को मानता हूँ।
सच यही है, मैं हजारों मे तुम्हे पहचानता हूँ।

मूर्ति पर चाहे चढ़े या भस्म हो जाये चिता पर,
गन्ध से प्रेयसि, कभी चन्दन विलग होता नहीं है।

हम नदी के दो किनारों सा लिए अलगाव लेकिन
एक धारा क्या हमारे बीच से जाती नहीं है ?
जागरण में हम भले ही दूरियाँ महसूस कर लें,
स्वप्न में पर क्या हमारी दृष्टि टकराती नही है ?

जिन्दगी हलचल कि वह वीरानियों का घर नहीं है ।
यह तुम्हारा मौन मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं है ।

रूप धुंधलाये भले या ज्योति आखों मे न आये,
दृष्टि से रूपसि, कभी दर्शन विलग होता नहीं है ।

तुम जिसे मैंने जतन से प्राण मे रखकर सहेजा,
अब खुले आकाश सी चारो तरफ फैली हुई हो ।
छू लिया मैने तुम्हे जब जन्म से अभिशप्त होकर
इसलिए तुम देह से भी प्राण, मटमैली हुई हो ।

वे तुम्हारे नेत्र मेरे आँसुओ मे डोलते हैं ।
तुम नही हो तो तुम्हारे पत्र मुझसे बोलते हैं ।

केलि-भवनो मे जड़े या मन्दिरों मे हो प्रतिष्ठित,
भावना से मानिनी, पाहन विलग होता नहीं है ।

क्या जरूरी है कि हम तुम बैठकर बातें बनायें,
यक्ष के सन्देश तो स्वच्छन्द उड़ते ही रहे हैं ।
क्या तुम्हे मालूम संगिनि, सृष्टि के आरम्भ ही से
हम हमेशा से यहाँ मिलते-बिछुड़ते ही रहे हैं ?

वायु के सँग-सँग तुम्हारी श्वास मुझ तक आ रही है ।
चाँद पर मेरी तुम्हारी दृष्टि फिर टकरा रही है ।

कंठ मे चाहे सँवारो, शब्द मे चाहे उतारो,
गीत से प्रेयसि, कभी गुंजन विलग होता नहीं है ।

●

ओ निशा-नयनी !

१८

ओ निशा–नयनी,
मुझे इतना बता दे
तू अभागिन क्यों समझती है स्वयम् को
जबकि तेरा नाम इतना पुण्यमय है
मृत्यु के क्षण भी कभी यदि
हो अधर से जो विसर्जित
यह अगम भव–सिन्धु मानव–मात्र तरता ही रहा है।
क्योंकि तू मेरे लिये तो मात्र केवल
अस्थि, मज्जा, मांस की गठरी नहीं है,
तू स्वयम् अस्तित्व मेरा क्योंकि तेरा
एक लघु–स्पर्श मेरी मृतमयी जीवन–शिरा में
चिर सुखद संजीवनी का स्रोत भरता ही रहा है।
मेरु सा तेरा यशस्वी भाल
जिस पर ध्रुव–जटित बिंदिया दमकती।
लाल वस्त्रों से सुसज्जित देह–श्री श्यामल,
सिहरते कर्ण–कुंडल यूँ कि जैसे
सूर्य की पहली किरण मानो उदयगिरि पर चमकती।
साम की मंगल-ऋचाओं से मधुर कल–कंठ के स्वर,
चिर पुनीता जाह्नवी सा वह धवल आँचल कि जिसमे
शान्त बैठा प्रेम का ज्वालामुखी है।
ओ निशा–नयनी, बता फिर क्यों दुखी है ?
वस्तु ऐसी कौन इस ब्रह्मांड में
जिसमें कि तेरी सूक्ष्मतम आकृति नही है ?

सृष्टि तो तेरी अपरिमित है जहाँ पर
सिर्फ 'अथ' ही 'अथ' प्रकट है, 'इति' नहीं है।
ओ निशा–नयनी,
दुखी मत हो कि जब तक
उँगलियों के बीच मेरी लेखनी है।
सूझ, भाषा, भाव, चिन्तन, कल्पना से–
यह हृदय जब तक विचारों का धनी है।
ये असीमित शब्द मेरे–
शीश पर तेरे अथक आशीष बन छाया करेंगे।
माँग मे तेरी हजारों गीत के मोती भरेंगे।
मानता हूँ मैं कि तेरी रुचि नहीं आभूषणों मे,
है नहीं शृंगार से तुझको प्रयोजन,
किन्तु मैं तो मोह मे तेरे सदा लवलीन होकर
शब्द से तुझको अलंकृत कर रहा हूँ।
जानता हूँ मौन से तेरा सदा अनुराग
लेकिन मैं मुखर होकर तुझे ले, आज झंकृत कर रहा हूँ।
याद रख जब तक कि मेरी
श्वास मे गति और बोझिल कंठ मे–
तेरी चिरन्तन वन्दना का–
एक भी अनमोल स्वर है।
ओ निशा–नयनी, दुखी मत हो कि तब तक
तू सहस्रों सूर्य सी मुझमें प्रखर है।

मैंने तो वैसे ही तुमसे

१६

मैंने तो वैसे ही तुमसे पूछा था बस नाम तुम्हारा,
परिचय की इस उत्कंठा को तुम क्यों प्यार समझ बैठी हो ?

अनुभव वृद्ध पिता है मेरा, ममता मेरी माँ दुखियारी ।
भाई मेरा प्रेम सगा है, आशा सगी बहिन सी प्यारी ।
विपदा मेरी प्राण-प्रेयसी, सुख-दुख दो नन्हे मृगछौने,
भरापुरा परिवार इसी से मैंने झोली नहीं पसारी ।

मैं तो मधुबन से गीतों के थोड़े फूल चुरा लाया था,
तुम अपने जूड़े का इनको क्यों शृंगार समझ बैठी हो ?

निर्धन की कुटिया में रोया, धनिको के महलों में गाया ।
मरघट से ले केलि–भवन की सुन्दरियों में रास रचाया ।
प्रभु के चरण–कमल से रति की पाकर सेज सभी सुख भोगे,
दुख है केवल यही कि अब तक मेरे हाथ न कुछ लग पाया ।

मैंने तो तमग्रस्त दिशा मे संघर्षों के दीप जलाये,
तुम अपने आँगन का इनको क्यों त्यौहार समझ बैठी हो ?

जाने कितने वज्र छिपे हैं मेघाच्छादित नील–गगन में ?
जाने कितनी शंकाये हैं मेरे और तुम्हारे मन में ?
लाखों बार हृदय से पूजे मठ मन्दिर गिरिजा गुरुद्वारे,
ऐसा कोई मिला न क्षणभर देता साथ अकेलेपन में ।

मुझको दर्द मिला जब तुमसे छलके हाय खुशी के आँसू,
तुम अपने आँचल पर इनको क्यों बौछार समझ बैठी हो ?

मेरा गीत नहीं यह मेरा, अनगिन कंठों का कलरव है ।
पीड़ा ही जिसकी चेतनता, आँसू ही जिसका उद्‌भव है ।
जीना एक कला है वैसे पाँच अँगारों की यह ठठरी–
प्यार अगर पाये तो मानव, प्यार नहीं पाये तो शव है ।

मैंने तो दुखियारे जग को करुणातुर हो बाँह बढ़ायी,
तुम पहले परिचय की इसको क्यों मनुहार समझ बैठी हो ?

यदि तुम भी मन मे खिलो

२०

यदि तुम भी मन में खिलो सृजन की करुणा बन,
सम्भव है मन का शून्य भवन जगमगा उठे।

निष्ठुरता है जब मूल्य समर्पण का केवल
क्यों परिचय की सौगन्ध दिलायी जाती है ?
देवता नहीं जब किसी याचना का भूखा
आरती किसी की क्यों ठुकरायी जाती है ?

वन्दना स्वयम् कोरा वहकावा बन बैठी।
अर्चना किसी की एक भुलावा बन बैठी।

यदि तुम प्रतिमा मे प्राण–प्रतिष्ठा बन विहँसो
सम्भव है, यह धुँधला दर्शन जगमगा उठे।

शशि के कलंक को देख शर्वरी सकुचायी,
मुँह बिचकाया सर्वस्व लुटाने वालों ने।
कोमल गुलाब जब खिला कँटीली शाखों पर
बदनाम किया उँगलिया उठानेवालों ने।

उन्माद पिघल आखों का पानी बन बैठा।
चिर सत्य एक काल्पनिक कहानी बन बैठा।

यदि तुम सुहाग की नयी दुल्हन बन माँग भरो
सम्भव है कलुषित गठ-बन्धन जगमगा उठे।

सुन्दरता चुभने लगी नयन में काँटा बन
चितवन से कोई हृदय कहीं जब छला गया।
संसार पराया हुआ, उमंगों ने कोसा
जब साथ किसी का हाथ छुड़ाकर चला गया।

शृंगार किया तन का कुछ रिसते घावों ने,
मन को दुलराया मन के घोर अभावों ने,

यदि तुम आँगन के चन्द्रखिलौने बन विहँसो
सम्भव है यह उजड़ा आँगन जगमगा उठे।

कुछ तोड़ रहे हैं धरती पर आकाश कुसुम,
कुछ सजा रहे हैं सेज सुबह की लाली में।
कुछ बँधे हुए वादों के विविध विवादों से,
कुछ आँख मूँद सो रहे खड़ी हरियाली में।

तुम तोड़ तनिक संकीर्ण परिधि बाहर आओ।
'है कला कला के लिए' यही बस दुहराओ।

यदि तुम भी कवि की निर्झरिणी में नहा सको
सम्भव है कवि का अभिनन्दन जगमगा उठे।

मैंने गीत पढ़ा तो

२१

मैंने गीत पढ़ा तो तुम पर जाने क्यों छा गयी उदासी,
मैं जब मौन हुआ तो जग में हाहाकार तुम्ही बन बैठे।

सुन्दरता का दोष नहीं यदि दर्पण का मुख दीन हुआ है।
सिंहासन क्या करे बिचारा भिक्षुक यदि आसीन हुआ है?
कैसे अपनी मादकता का मैं तुमको विश्वास दिलाऊँ,
मैं आकर्षणहीन नहीं हूँ, जग आकर्षणहीन हुआ है।

पथ की कुंठा से उकता कर मैंने कुछ पाषाण जुटाये,
जब तक मूर्ति गढ़ूँ श्रद्धा के कुंठित द्वार तुम्ही बन बैठे।

जब तक था अनजान स्वयम् से, जब तक थी भेदों की छाया।
मुल्ला ने मेरा सर चाटा, पंडित ने मुझको बहकाया।
जिस क्षण ज्ञात हुआ यह मुझको तुममें सारी सृष्टि समायी,
सब शंकाये छोड़ भ्रमों की दौड़ा द्वार तुम्हारे आया।

तुमको कंठ लगाकर चाहा मुस्कानों के फूल बिखेरूँ,
जब तक अधर हिलें, नयनों में आ जलधार तुम्ही बन बैठे।

तन की राख रुची कुछ ऐसी, मन का मँहगा धन खो बैठा।
मैं तो एक किरन के पीछे सारा नील-गगन खो बैठा।
दुनिया सिर्फ ठगों की बस्ती, मैं हूँ एक लुटा सौदागर,
पारस का था लोभ मुझे, मैं गठरी का कंचन खो बैठा।

मैंने चाहा इन लहरों से अपनी नाव किनारे कर लूं,
जब तक पाल तरी के खोलूँ, तट पर ज्वार तुम्ही बन बैठे।

नभ-गङ्गा यदि रूठ गयी तो चाँद स्वयम् शरमीला होगा।
सावन लौट गया यदि सूखा धरती का मन गीला होगा।
तृप्ति बहुत प्यारी है सबको लेकिन प्राण, इसे मत भूलो-
जितनी प्यास मुझे तुम दोगे उतना कंठ सुरीला होगा।

मैंने चाहा था गा-गाकर बेसुध कर दूँ सृष्टि समूची,
जब तक गूंज भरूँ, वीणा के टूटे तार तुम्ही बन बैठे।

बिदा लेकर तुमसे जो चला

२२

बिदा लेकर तुमसे जो चला
नयन में भर आया कुछ जल।

वही आकर्षण, वही खिँचाव,
वही कुछ पहले जैसा मोह।
वही कुछ भूखे-प्यासे प्राण,
वही कुछ यौवन से विद्रोह।
किन्तु अब मैं न रहा वह घूँट
जिसे पी मुँदे तुम्हारे नयन,
सकुच कर सिमट गये सब अंग
निखर कर बिखर गये कुन्तल।

वही सौन्दर्य, वही संगीत,
बीन भी वही, वही लयताल।
वही स्वरजाल, वही कलकंठ
उँगलियों की वैसी ही चाल।
किन्तु अब मैं न रहा वह गीत
जिसे छू खुला तुम्हारा कंठ,
कहाँ से लाऊँ मेघ–मल्हार
न इस मरु पर छाया बादल।

वही मन्दिर, प्रभु–प्रतिमा वही,
वही शंखः ध्वनि का जयगान।
वही चन्दन अक्षत निर्माल्य,
पुजारिन का वैसा ध्रुवध्यान।
किन्तु अब मैं न रहा वह अर्घ्य
जिसे दे फली तुम्हारी साध,
कहाँ जाकर माँगू वरदान
पुन्य सब दीन–हीन–निष्फल।

क्या कहा जग की गलियों बीच
बिछुड़ते मिलते हम अज्ञात।
एक ही धुरी, एक ही धरा,
जहाँ हम घूम रहे दिनरात।
किन्तु अब मैं न रहा वह बिन्दु
क्षितिज पर जहाँ मिले दो छोर,
उधर से झुका हठी आकाश,
इधर कुछ उठ आया भूतल।

न देखो मेरे कवि की ओर

२३

न देखो मेरे कवि की ओर

कला की तुम कोमल अभिव्यक्ति
सृजन के सुन्दरतम शृंगार ।
निराला के छन्दों सी गूढ़
पंत के शब्दों सी सुकुमार ।
तुम्हारे जीवन का आरम्भ
कि मेरी गति पर पूर्ण-विराम,
कि मेरे जीवन की गोधूलि
तुम्हारे नव-यौवन की भोर ।

बहुत दिन खोये विधु के पास,
बहुत गाये रजनी के गीत ।
प्राण के पनघट पर भी सुना
नयन–निर्झर का जल–संगीत ।
विगत की घनजाली को चीर
प्रश्न बन उभरा एक रहस्य,
तुम्हारी छवि का मैं प्रतिबिम्ब
कि मेरी छवि के तुम चितचोर ?

सुगन्धित मलयागिरि सी देह,
बाहुओं में यौवन का ज्वार ।
कंचुकी में तक्षक, कटि बीच
समेटे गज–मस्तक का भार ।
कौन तुम गज–गामिनि सी प्रिये,
भाग्य की अर्ध–निशा में, पंगु–
शिथिल, असमर्थ बाहुओं बीच–
प्रणय की उठती हुई हिलोर ?

काल का कितना अद्‌भुत व्यंग्य,
हृदय का कैसा जड़–व्यापार ।
मृत्यु की धूम–शिखाओं बीच
तुम्हारा 'छुई–मुई' सा प्यार ।
और मैं निरुद्देश्य गति–हीन,
अनगिनत कुंठाओं के बीच
काल पर करता हूँ आघात
कला का थामे शाश्वत छोर ।

यदि तुम चाँद न होते

२४

यदि तुम चाँद न होते तो मैं
मिलने का संकेत न करता ।

नभ से निखर, बिखर वसुधा पर
हँसता सा शरदागम आया ।
रजनी ने डाली गलबाँही,
चन्दा ने घूंघट खिसकाया ।
मेघ हँसे, सहमा मलयानिल
पर मेरी मदमस्त नजर में
यदि तुम चाँद न होते तो मैं
मिलने का संकेत न करता ।

आशा की लतिका में निशिदिन
सुधि के फूल खिले कुम्हलाये।
प्राण–तटी के प्यासे पाहुन
मानस में डूबे उतराये।
सच कहता हूँ इसी भाँति से
मेरे मन की फुलवारी के
यदि तुम फूल न होते तो मैं
खिलने का संकेत न करता।

जग–जीवन की वल्लरियों से
एक कली मैंने भी तोड़ी।
सुख में सुखी, दुखी हो दुख में
बाँह गहे की लाज न छोड़ी।
वह मेरी आँखों का काजल
वह मेरा निष्ठुर साँवरिया,
यदि पाषाण न होता तो मैं
हिलने का संकेत न करता।

थक जाते हैं चरण, मरण की
नगरी में आने से पहले।
लुट जाता है स्नेह देह का
अर्थी उठ जाने से पहले।
यदि मुझमे जीवन की मंजिल
तय करने का साहस होता,
मैं पंथी पाँवों के छाले
छिलने का संकेत न करता।

●

चैत की यह अलसायी रैन

२५

व्योम पर खिला दूधिया चाँद
चैत की यह अलसायी रैन ।

निशा का धूमिल नील दुकूल,
फैलता क्षितिज तटी के कूल,
विभा की वल्लरियों को चूम
विहँसते चन्द्रकिरन के फूल ।
धरा ने किया रजत शृंगार
क्षितिज पर झुका गगन बेचैन ।

हिमानी शैलों का हिम-हास,
बढ़ाता दिग्वसना की प्यास,
लुटाता झुक झुक कुंज निकुंज
मलय का पंथी सुरभि सुवास।
छेड़ता निर्झर जल संगीत
विहग के बिसर गये सब बैन।

धवल नभ-पथ का जल-शृंगार
उतर आयी सरसिज के द्वार,
लहर ने आकर लिया बटोर
कुमुद की पंखुरियों का प्यार।
जुही ने हृदय खोल रख दिया
ओस के बिखर गये सब सैन।

नयन निर्झरिणी से छवि सींच,
खड़ा मैं जीवन-मरु के बीच,
देखता चन्दरिमा की ओर
अधूरी अँगड़ाई को खींच-
गा रहा हूँ 'बच्चन' का गीत
'तुम्हारे नील झील से नैन'।

यौवन बनकर तुम न मिलो तो

२६

तन कगार के वृक्ष सरीखा, मन नदिया की धार है ।
यौवन बनकर तुम न मिलो तो बहुत दुखी संसार है ।

कंचन बरसे मेघ भले या हीरों का खलिहान हो ।
सागर तट पर साँझ ढले या गिरि पर अरुण विहान हो ।
घूँघट में हो नयी दुल्हन या दिया जले कन्दील में ।
कुन्दन जैसा चाँद नहाये नील निशा की झील में ।

सुन्दरता सब एक सरीखी, सब पर नया निखार है ।
आकर्षण बन तुम न मिलो तो व्यर्थ सभी सिंगार है ।

ज्ञानी ढाले सुरा पुन्य की, मूरख ढाले पाप की ।
लोभी बेसुध हुआ स्वार्थ में पीकर परसन्ताप की ।
किसी सूम को अपनी टूटी छत पर बड़ा गरूर है ।
दुनिया में रहकर भी कोई इस दुनिया से दूर है ।

प्याले सबके एक सरीखे, सब पर चढ़ा खुमार है ।
मदिरा बनकर तुम न मिलो तो विष गङ्गा की धार है ।

कोई मोल खरीदे मन को, कोई भरे शरीर को ।
दान पुन्य पर बेचे कोई जा गङ्गा के तीर को ।
द्वार द्वार पर घूमे कोई लाद गठरिया ज्ञान की ।
कोई बैठा करे दलाली मन्दिर मे भगवान की ।

नीयत सबकी एक सरीखी, मुँहदेखा व्यवहार है ।
सौदा बनकर तुम न पटो तो व्यर्थ सभी व्यापार है ।

काल पूजता केवल माटी, आयु इसी संसार को ।
देह निगोड़ी सोना पूजे, हृदय किसी के प्यार को ।
पेट पूजता केवल रोटी, बँधे हाथ तकदीर को ।
ऐसा कौन यहाँ जो पूजे सदा परायी पीर को ?

मन्दिर सबके एक सरीखे, मूरत सब साकार है ।
श्रद्धा बनकर तुम न मिलो तो व्यर्थ मंगलाचार है ।

कोलाहल से दूर बहुत हूं

२७

मैं तेरे गीतों का छलिया फिर भी छल से दूर बहुत हूँ ।
जग में रहकर भी मैं जग के कोलाहल से दूर बहुत हूँ ।

मुझे रिझाती ही रह जातीं सावन की कजरारी रतियाँ ।
तनिक नहीं ठग पाती मुझको कलियों की कोमल रसबतियाँ ।
छूकर मेरा कंठ पिकी का गुंजन भी पीड़ा बन जाता,
मैं तेरा दुखियारा आँसू पर आँचल से दूर बहुत हूँ ।

पंख कल्पना के कुम्हलाये, सूख गयी भावों की क्यारी ।
किन छन्दों की ओट थिरकती तू गीतों की राजकुमारी ?
तेरी छूम–छनन भर देती मेरे गुंजन में मादकता,
मैं तेरे आँगन का घुँघरू पर पायल से दूर बहुत हूँ ।

चाँद सितारों की नगरी में खिल उठता पूनम का मेला ।
यौवन के आँगन में टिमटिम मैं माटी का दीप अकेला ।
मेरा मोल न चुक पायेगा रश्मिरथी के आलिंगन से,
मैं सन्ध्या का कम्पित प्रहरी उदयाचल से दूर बहुत हूँ ।

प्राणों में करुणा का कम्पन, पलकों पर आशा का पानी ।
कुछ साँसों का भार समेटे मेरे कवि की राम–कहानी ।
जीवन मेरी चिर–अतृप्ति को पागलपन कहकर ठुकराता,
मैं तेरी चीत्कार चातकी पर बादल से दूर बहुत हूँ ।

प्रतिभा के चेतन तत्वों से मानव को कुछ बल देता हूँ ।
लौह लेखनी से सदियों का मैं इतिहास बदल देता हूँ ।
मेरी थाह न गह पायेंगी जीवन की उत्ताल तरंगें,
मैं तट की चट्टान अकंम्पित बड़वानल से दूर बहुत हूँ ।

चिन्तन

२८

छीन ली तुमने न जाने कौन सी अनमोल अलका,
आज लगता है कि निर्धन हो गया हूँ।

जामुनी–जमुना सरीखे वे तुम्हारे श्याम कुन्तल
प्राण–वन में गन्ध भर पाते नहीं हैं।
व्योम–गङ्गा के सँवारे वे किरन–कङ्कन तुम्हारे
अब कलाई में ठहर पाते नहीं हैं।
धुल गयी वर्षान्त ही के पूर्व क्यों धानी चुनरिया,
मिट गये कैसे महावर और मेहँदी,
प्यास कुछ ऐसी जगायी तृप्ति का देकर प्रलोभन,
आज लगता है कि सावन हो गया हूँ।

गूंज यदि भरते तुम्हारे नूपुरों के चिर–चपल स्वर,
पंख सरसिज के प्रभंजन खोलता था।
कंठ था ऐसा जिसे छू नृत्य कर उठती दिशायें,
गीत था ऐसा कि त्रिभुवन डोलता था।
काल के किस गर्त मे जा खो गये दो चार क्षण वे,
जन्म अब लगता निरर्थक और निष्क्रिय,
शाप क्या तुमसे मिला जो मुक्ति की छूकर परिधि मैं
आज लगता है कि बन्धन हो गया हूँ।

आज लगता है कि जैसे चूमकर मेरी हथेली
अनबिंधा मोती कहीं पर खो गया है।
आज लगता है कि जैसे शून्य बन मेरे लिये ही
सृष्टि का सबकुछ पराया हो गया है।
मैं नहीं इतना अकिंचन हूँ कि यह पुरुषार्थ मेरा
भाग्य के सम्मुख दया की भीख माँगे,
किस सरलता ने मुझे छल कर दिया है गूढ़ इतना
आज लगता है कि दर्शन हो गया हूँ।

ज्ञान–गङ्गा के किनारे शब्द की धूनी रमाये
देह को तिल–तिल घुलाकर जी रहा हूँ।
सृष्टि मे केवल अमरता शेष रह जाये इसीसे
सृष्टि का सारा हलाहल पी रहा हूँ।
गीत क्या मेरे लिये तो एक आँचल है कि जिसमें
मैं दुखी संसार के आँसू छिपाता,
बाहु से लिपटो भले तुम क्रुद्ध आहत सर्पिणी सी,
आज लगता है कि चन्दन हो गया हूँ।

प्यार से परिचय नहीं था

२६

डूब जाओ आज मेरे गीत की गहराइयों में,
कल न कहना प्राण, मेरा प्यार से परिचय नहीं था।

दूर पश्चिम के शिखर से
किस प्रिया के आगमन की
गन्ध भर मलयानिली झोंके उमड़ते ?
किन सुरीले सप्तकों में
भींग, मेरे प्राण–वन की
टहनियों से कामना के फूल झड़ते ?
विश्व–वन की वेलि सींचो,
मुक्त नभ में श्वास खींचो,
कल न कहना गन्ध के छविभार से परिचय नहीं था।

गीत कुटियों में खिले हों
याकि महलों से मिले हों
विश्व का सुख-दुख बँटाना जानते हैं।
हाथ सूली पर जड़े हों
याकि घूँघट पर पड़े हों
आदमी के काम आना जानते हैं।
ज्ञान के मत पाश डालो,
तर्क का घेरा उठा लो,
कल न कहना गीतिमय संसार से परिचय नहीं था।

प्रेरणा के चित्रपट पर
पड़ गये क्यों रंग फीके,
एक धुँधली चित्रसारी रहगयी है।
कौन वह संकोच जिससे
आज श्रम की बाहुओं में
तूलिका मेरी कुँवारी रह गयी है?
भ्रान्ति के कटुपाश खोलो,
सृजन में करुणा टटोलो,
कल न कहना विश्व के व्यवहार से परिचय नहीं था।

मत दुहाई दो मुझे तुम
प्रति नवीना मान्यता की,
आस्था अनुमान पर टिकती नही है।
मत प्रलोभन दो मुझे तुम
मुक्ति की कमनीयता का,
मोल पानी के कला बिकती नही है।
थक चुके तो साथ आओ
और गति में गति मिलाओ,
कल न कहना पंथ के विस्तार से परिचय नहीं था।

ज्योति-विहग

३०

हे विश्ववंद्य भारत भूतल के ज्योति–विहग,
स्वच्छन्द गगन कर रहा तुम्हारा अभिनन्दन।

विजयी ललाट पर झलक रहे श्रम–स्वेद–बिन्दु,
उन्मुक्त हृदय में नव–विहान की लाली है।
मुखरित होता बन्धुत्व तुम्हारे गुंजन से
हाथों में हल, मुट्ठी में नयी कुदाली है।
पुरुषार्थ खड़ा हँस रहा विजयिनी बाहों में,
जागरण हिलोरें भरता मुक्त निगाहों में,
तुम जन–जीवन में नवल चेतना के प्रतीक,
साफल्य तुम्हारे चरणों पर करता नर्तन।

वसुधा के अञ्चल में हिमाद्रि का रत्न दीप,
भर रहा चिरन्तन स्नेह जर्जरित प्राणों में।
पशुता के कुम्भज फोड़ धरा पर मानवता
इतिहास नया लिख रही मूक पाषाणों मे।

अविभाज्य एकता का करने को सूत्रपात,
मनु की अलका में विहँस रहा मंगल-प्रभात,
भेदों की कालिख मिटा रहा जगतीतल से
पददलित मनुज की शोषित आत्मा का क्रन्दन।

विध्वस्त हो रहीं वर्ग-भेद की प्राचीरें,
दे रही चुनौती शान्ति आणविक ज्वाला को।
दम तोड़ रहा साम्राज्यवाद सा घृणित शत्रु,
पी रहा विश्व स्वातत्र्य प्रेम की हाला को।

युद्धों की लिप्सा घटी द्वन्द की छाया से,
देवत्व हुआ अवतीर्ण मनुज की काया से,
हँस रहा नवल-निर्माण पुरातन ईटो में,
विश्वास हाँकता चला मनुजता का स्यन्दन।

मानव महिमा के गीत गा रहा काल-पुरुष,
हिंडोल नया उठ रहा सृजन के तारों पर।
श्रम की अपराजित शक्ति लिये लड़ रहा मनुज
कर्मठ जीवन के जन्मसिद्ध अधिकारो पर।

अणु के रहस्य में सुख-समृद्धि का विमलवास,
स्वाधीन जगत में पंचशील का नव-विकास,
नूतन भविष्य के खोल रहा आलोक पृष्ठ,
गतिमान समय के लौह चक्र का आवर्तन।

●

शेष उजाला मैं दे दूंगा

३१

मत हो तनिक उदास साकिया, महफिल और जरा जमने दे,
जीवन मधु हो गया खत्म तो यौवन हाला मैं दे दूँगा।

प्यासा है हर कठ यहाँ का, सबके पात्र यहाँ पर खाली।
पतझर के लोलुप पजों से कलियो की होती रखवाली।
यह कैसा अन्याय नियति का एक दिये की नन्ही लौ जो–
तिल तिलकर बुझ रही उसी से जूझ रही निशि की अँधियाली।
दिशि दिशि फैली घोर दुराशा,किंचित ज्योति न किंचित आशा।
धरती से उठ गया उजाला सूरज देखे बैठ तमाशा?
यह आतक न सह पाऊँगा, मै अब मौन न रह पाऊँगा,
थोड़ा स्नेह धरा तू दे दे, शेष उजाला मै दे दूंगा।

सूना गेह, पिया परदेसी, बैरिन सौत करे मुंहजारा।
पास-पड़ोसी की अँखियन में गड़ गड़ जाय चुनरिया कोरी।
दासी कुटिल, पौरिया कामी, घर की लाज बचे तो कैसे,
लाख जड़े तू तन पर ताले, मन की टूटे हाय तिजोरी।
प्रतिपल यश अपयश की शंका, प्रतिपल दिग्भ्रम की आशंका।
हाय, हजारों भेदी घर के ले डूबे सोने की लंका।
मेरी कला न कर दुख दूना, श्रम का भाल न होगा सूना,
अश्रु गये यदि सूख, स्वेद की यह जयमाला मैं दे दूंगा।

धूप निगोड़ी सागर सोखे, तम को देख दिया घबराये।
बुंदियन से बरसे चिनगारी, पुरवा हाय धुंआ बन जाये।
कला सिर्फ व्यवसाय यहाँ पर, प्रतिभा ऐसी हाट जहाँ पर-
साधू खड़ा पेट को तरसे, ढोंगी बैठ मुनाफा खाये।
चाटुकारिता की चतुराई, कितनी जटिल समस्या भाई।
लाश पड़ी आँगन मे लेकिन दरवाजे पर बँटे मिठाई।
पीड़ा की हर उक्ति मंत्र है, आँसू का हर कवि स्वतन्त्र है,
लौ न उठी यदि कभी क्रान्ति की, अन्तर्ज्वाला मैं दे दूंगा।

धरती मेरी काव्य-पीठिका, नभ मेरा भावाकुल मन है।
सुख-दुख हैं दो पक्ष काव्य के, ऋतुएँ मेरा शब्द-चयन है।
भाषा प्रेम, सहजता शैली, वस्तु-विषय केवल तन्मयता,
मैं स्वर का सम्राट स्वयम् हूँ, मेरे पास कला का धन है।
जीवन से अक्षय गति पा ली, लो अब मैंने बीन उठा ली।
वाणी के शोषक स्वरकारों, मेरा मंच करो अब खाली।
नयी चेतना के ध्वजवाही, ध्वज पर फैल न जाये स्याही,
नव-जागृति के हर कलंक को देशनिकाला मैं दे दूंगा।

नयी कलम से

३२

सूर्य तुझसे खौफ खाये, चाँद देखे डूब जाये।
क्या सितारे की हिमाकत रोशनी तुझको दिखाये ?

ऐ सुबह की शाहजादी
आज क्यों खामोश सी तू
सेज पर सहमी पड़ी है ?
यह बगावत की घड़ी है।

तन शिथिल, मुख म्लान तो क्या, पंथ यदि सुनसान तो क्या ?
घिर रहा पीछे बवंडर सामने तूफान तो क्या ?
दृष्टि का दिग्भ्रम नहीं है, आँधियों का ग़म नहीं है।
तम बहुत है तो दिये में रोशनी भी कम नही है।

ऐ पहाड़ों की दुलारी
किसलिए तू काहिलों सी
खुदकशी पर ही अड़ी है ?

बीन क्यों तेरी रुआँसी, कंठ सूखा, श्वास प्यासी।
यह जवानी, यह उमंगे, यह अँधेरा, यह उदासी?
तोड़ दे सब पाश तम के, तू दिखा जौहर कलम के।
तू चमक ऐसे कि जैसे पूर्णिमा का चाँद चमके।

ऐ सितारों की सहेली,
एक लघु-मुस्कान तेरी
सौ बहारों से बड़ी है।

आज चारो ओर तेरे, देख गीतों के लुटेरे।
किस कदर गुटबन्दियों से हैं मठों का द्वार घेरे।
स्वप्न इनके दूर कर दे, इन मठों को चूर कर दे।
धूल का कण-कण उठाकर आज कोहेनूर कर दे।

ऐ अजन्ता की किशोरी,
तू दिखादे आँसुओं में
आग की भी फुलझड़ी है।

सूर पर कालिख लगायी, हाय, मीरा रो न पायी।
आज तुलसी की तपस्या कुछ ठगों ने बेच खायी।
यह जहालत और जीना? उफ् न करना, अश्क पीना?
तू दिखादे इन ठगों को क्या लहू क्या है पसीना?

ऐ हिमालय की भवानी,
एक तेरी ही चुनरिया
आज क्यों काँटों जड़ी है?

जय भारत, जय भारतमाता

३३

जय भारत जय भारतमाता

हिममंडित रजताभ गगन में,
विजयी गीत गुंजित त्रिभुवन में,
गङ्गा-जमुन की चेतन-धारा-
अर्घ्य चढ़ाती पद-वन्दन में।
साँझ सकारे तेरे द्वारे,
अस्तोदय आरती उतारे,
अर्चन करता विश्व-विधाता।
जय भारत, जय भारतमाता।

दिनमणि की मणिमय जयमाला,
ध्रुव तेरा सौभाग्य निराला,
तेरे आँचल से आलोकित-
तमसावृत युग का अँधियाला।
सोम सुधामय मङ्गल वाणी,
तेरी ममता चिर कल्याणी,
गौरव गीत हिमाचल गाता।
जय भारत, जय भारतमाता।

जन–जीवन की मधुमय घाटी ।
शस्य श्यामला उर्वर माटी ।
त्याग तपस्या से परिपूरित–
तेरे वीरों की परिपाटी ।
बलिदानों की अक्षय गङ्गा ।
अंकित करता तुंग तिरंगा ।
उज्ज्वल हिम नग पर लहराता ।
जय भारत, जय भारतमाता ।

दिनपति ज्योतिमान करों से,
भेंटा करता गिरि शिखरों से ।
तेरी महिमा विश्व–भारती–
मुखरित करती सप्त–स्वरों से ।
तेरे अरुण अधर की लाली,
तेरे शशिमुख की उजियाली,
रवि शशि कोई पार न पाता ।
जय भारत, जय भारतमाता ।

नूतन–संस्कृति की अरुणाली,
तोड़ रही विभ्रम की जाली,
तेरी अलका महापुनीता,
तेरा वैभव अक्षयशाली ।
प्राणों में करुणा बिखराये ।
कण–कण में 'परमाणु' छिपाये ।
युग का मानव अर्घ्य चढ़ाता ।
जय भारत, जय भारतमाता ।

एक हिमालय के हम बेटे

३४

धर्म एक, ईमान एक है।
कला एक, विज्ञान एक है।
गीता और कुरान एक है।
पूरब पच्छिम उत्तर दक्खिन
सारा हिन्दुस्तान एक है।

एक हिमालय के हम बेटे, गङ्गा माँ का नीर है।
इसीलिए भारत के हाथों दुनिया की तकदीर है।

हर देहरी पर क्यारी होगी।
हर आँगन फुलवारी होगी।
हर तन पर रेशम, रेशम पर–
गोटा जड़ी किनारी होगी।

सबके आगे रोटी होगी।
सबके साथ लँगोटी होगी।
दुनिया छोटी हुई हमारी
लेकिन और न छोटी होगी।

पंडित कितना ही बहकाये।
मुल्ला चाहे मुँह बिचकाये।
गिरजाघर मै खड़ा पादरी
चाहे जितना शोर मचाये।

नयी फसल का धान एक है।
खेत एक खलिहान एक है।
मेहनतजदा किसान एक है।
पूरब पच्छिम उत्तर दखिन
सारा हिन्दुस्तान एक है।

एक शमाँ के हम परवाने, दुनिया दामनगीर है।
मजहब का ही नाम प्यार तो मेरा देश फकीर है।

चित्रकूट में बुलसी सोये।
मीरा राम रतन धन खोये।
धरम करम के आडम्बर पर
डफली लिए कबीरा रोये।

जाँतिपाँति की गहरी खाई।
अब तक हाय नहीं पट पाई।
सारा सूरज निगल गयी है
मूढ़ अमावस की कजराई।

नासमझी की सारी बातें।
बिन दूल्हे की ये बारातें।
कैसे हाय कटेंगी साधो!
सूरज बिना अँधेरी रातें?

हिन्दुकुश की शान एक है।
विन्ध्याचल का मान एक है।
गङ्गा का मैदान एक है।
पूरब पच्छिम उत्तर दखिन
सारा हिन्दुस्तान एक है।

ऐसे काँटे चुभे बदन में नस नस होती पीर है।
क्या गोरा क्या काला भाई, सबका एक शरीर है।

एक नदी की सौ सौ धारें।
किसको चूम किसे दुतकारे?
सबकी एक जुबाँ है भाई
फिर क्यों इतनी चीख पुकारें।

हिन्दी उर्दू बँगला बोली।
जितनी भी सबकी सब भोली।
सबके मुँह में है घी–शक्कर
सबके माथे चन्दन–रोली।

कैसी चुटकी कैसा ताना?
सबका एक सरीखा बाना।
सब बहनों मे चलता रहता–
आपस का रूठना मनाना।

संस्कृति की सन्तान एक है।
लिपि का यहाँ विधान एक है।
हर भाषा की शान एक है।
पूरब पच्छिम उत्तर दखिन
सारा हिन्दुस्तान एक है।

एक सुमिरिनी के सब मोती, सबका उजला चीर है।
जमुना से क्या ताजमहल की अलग हुई तस्वीर है?

कल जब नया सबेरा होगा।
नये सूर्य का फेरा होगा।
करवट लेगा देश कि सुख का
चारो ओर बसेरा होगा।

घर घर मे उजियाली होगी।
कोई दिशा न खाली होगी।
सबके गेह मनेगी होली–
सबके द्वार दिवाली होगी।

कभी कही पर लूट न होगी।
किसी तरह की छूट न होगी।
पनपेगा यह देश साथियों!
जब आपस में फूट न होगी।

गौतम का निर्वान एक है।
गाँधी का बलिदान एक है।
हँसी खुशी से सबके चेहरे–
पर सबकी मुस्कान एक है।
पूरब पच्छिम उत्तर दख्खिन
सारा हिन्दुस्तान एक है।

जितना प्यारा हमे जुहू-तट उतना ही कश्मीर है।
कोई आँख उठे तो सबके हाथों में शमशीर है।

●

तुम खिले क्या, खिला मिलन जैसे

३५

तुम खिले क्या, खिला मिलन जैसे ।
खिल उठा आज प्राण–वन जैसे ।

शुभ्र मुखचन्द्र, श्याम अवगुंठन,
चन्द्र के द्वार नीलघन जैसे ।

शब्द रस रूप गन्ध परिरम्भन,
बिँध गया हो किशोर मन जैसे ।

प्रीति का आह वह प्रथम परिचय,
थम गया सृष्टि का सृजन जैसे ।

क्षीण लघु रेख बन गयी गङ्गा,
खिल उठा इन्दु बिन्दु बन जैसे ।

मौन था कंठ, बोल यूँ फूटे,
कुनमुनाये किरन–किरन जैसे ।

तूलिका की सुहाग शैया पर
इन्द्रधनु कर रहा शयन जैसे ।

प्राण फिर भी उदास क्यों 'नागर'
सृष्टि का हो गया निधन जैसे ।

यदि न मिलते तुम

३६

यदि न मिलते तुम
मुझे इस सृष्टि में तो
सृष्टि की तो बात ही क्या
मैं स्वयम् को भी नहीं पहचान पाता ।
बुद्धि मेरी संकुचित होती,
भटकता ज्ञान मेरा कुछ किताबी दायरों में
और मैं सीमित परिधि को छोड़कर बाहर न आता ।
यदि न मिलते तुम मुझे तो
कौन मेरी चेतना की ग्रन्थि को–
झकझोर कर कहता कि 'लो मैं प्रेरणा हूँ,
शब्द से मुझको सँवारो,
अर्थ से मेरा करो शृंगार, मुझमें–
रग कुछ ऐसे भरो अनुभूतियों के
यह तुम्हारी साधना ज्योतिर्मयी हो ।
बात चाहे जो लिखो लेकिन नयी हो ।
इसलिये मैंने न पूजे पाँव कोरे पंडितों के,
जा किसी गुरु की शरण में
ज्ञान की पोथी न बाँची,
ज्ञानियों के साथ समझौता न तिलभर कर सका मैं,
जो सुना तुमसे उसी को 'सत्य' समझा,
जो कही तुमने लगी वह बात साँची ।
क्योंकि यह मैं जानता हूँ
वस्तु जो एकत्र अब तक कर सका मैं
वह धरोहर है तुम्हारी, धन तुम्हारा ही दिया है ।
मात्र मैं तो एक माध्यम हूँ, कलाकृति है तुम्हारी,
चित्र अब अपना समझ मैंने जिसे अपना लिया है ।

यदि न मिलते तुम मुझे तो
मैं न सह पाता कभी सौ जन्म में–
वे आपदायें, व्यङ्ग, कुंठा, भूख, बेकारी, गरीबी,
वज्र जैसा भाग्य का वह क्रूरतम आघात जो मैंने सहा है।
कौन समझाता मुझे 'पगले ! समूची–
सृष्टि एकाकी, यहाँ पर–
आदमी का भाग्य भी उससे सदा
दो चार डग आगे रहा है।'
इसलिए मैं सृष्टि के सौन्दर्य से होकर विमुख अब–
आयु के आकर्षणों को दे तिलांजलि,
लीन कर अपनी कला के बीच तुमको
बस तुम्हारी ही शरण में आ गया हूँ।
जानता हूँ तुम अनश्वर और अविभाजित यहाँ पर,
पूर्णता को प्राप्त हो केवल इसीसे–
छू न पायेगा कभी वह काल मेरी छाँह तक भी
क्योंकि अब तो मैं तुम्हारे आवरण में आ गया हूँ।
मैं शपथ खाकर तुम्हारी
कह रहा सच प्राण, तुम मानो न मानो,
तुम मुखर होते मुझे अनुभूति जब पुचकारती है।
काव्य मेरा, शब्द में केवल तुम्हारी आरती है।

●

दुनिया में लाने वाले

३७

दुनिया मे लाने वाले !
सबको अपनाने वाले !
गीतों की नवरस वाली–
मदिरा छलकाने वाले !

जो कुछ भी गाता हूँ मैं,
तुझको दुहराता हूँ मैं,
सागर के तट पर फिर क्यों
प्यासा रह जाता हूँ मैं ?

मेरी भी झोली भर दे ।
मुझको भी कंचन कर दे ।

दुर्दिन के फेरे में हूँ।
शापों के डेरे में हूँ।
मधुऋतु का स्वामी होकर
पतझर के घेरे में हूँ।

दर्पन सा मन है मेरा।
कुन्दन सा तन है मेरा।
गीतों की गठरी ही तो
निर्धन का धन है मेरा।

सागर से गहरा हूँ मैं,
लहरों पर लहरा हूँ मैं,
दीपक की जिद्दी लौ सा–
आँधी में ठहरा हूँ मैं।

सबका फल चखने वाले,
सबका मन रखने वाले,

शापों से ऊबा हूँ मैं।
पापों में डूबा हूँ मैं।

मेरा मन पावन कर दे।
मुझको भी सावन कर दे।

तन मन के हैं जो काले,
उनके तो ढंग निराले,
बगिया मे चोरी चोरी
लुकछिप कर आने वाले,

सुमनों का जो रस लेते।
बाँहो में कस कस लेते।
मधुरस के लोभी भौंरे–
कलियों को डस डस लेते।

मेरा सुख छलते क्यों है ?
मुझको ये खलते क्यों हैं ?
मैं भी जब गुन गुन करता–
मुझसे ये जलते क्यों हैं ?

बादल बन छाने वाले,
बिजली बन आने वाले,

पाहन के गलते गलते,
यौवन के ढलते ढलते,

मेरा मन नन्दन कर दे।
मुझको भी चन्दन कर दे।

जीवन की जमुना तीरे,
यौवन के कुंज कुटीरे,
मेरा मन बींध रही है
वंशीधुन धीरे धीरे ।

चितवन के शर गर्वीले ।
यौवन के शूल नुकीले ।
अधरों पर चुभ चुभ जाते
चुम्बन वे गीले गीले ।

सपने भरमाते हैं क्यों ?
पीछे पड़ जाते हैं क्यों ?
फूलों को बोता हूँ तो
काँटे उग आते हैं क्यों ?

समदर्शी बनने वाले,
किरनों से छनने वाले,

घर घर दीवाली क्यों है ?
मेरा घर खाली क्यों है ?

मन का कुछ कल्मष हर दे ।
मुझको भी ज्योतित कर दे ।

सूरज से आँख मिलाते।
चन्दा को भू पर लाते।
जीवन की भट्ठी में जो–
कंचन से तपते जाते।

सबकी सह लेते हैं जो।
अपनी कह लेते हैं जो।
मेहनत मजदूरी करके
भूखे रह लेते हैं जो।

खेतों में डोल रहे जो।
सुख–दुख को तोल रहे जो।
उनका ही यश मैं गाऊँ
श्रम की जय बोल रहे जो।

घट घट मे रमने वाले,
श्वासों मे थमने वाले,

बस्ती बटमारों की है।
दुनिया ज़रदारों की है।

मेरी भी गागर भर दे।
'नागर' को सागर कर दे।

प्रेरणा के प्रसून

३८

प्रेरणा के प्रसून कुम्हलाये ।
लुट गयी सेज, तुम नहीं आये ।

चूम ले कौन इस पिपासा को,
यह थके प्राण कौन दुलराये ?

कंठ जब मौन हो गया मेरा,
अश्रु ने शेष शब्द दुहराये ।

पंक्ति है वह कि जो हृदय छूले,
गीत है वह कि आँख भर आये ।

वह हृदय क्या कि जो न दुर्बल हो,
चाँद वह क्या कि जो न कजराये ।

पाँव हैं वे कि लक्ष्य तक पहुँचें
लक्ष्य है वह कि जो न मिल पाये ।

बात थी एक, अर्थ थे अनगिन,
सुन सके कुछ न, कुछ न कह पाये ।

आयु कितनी अपूर्ण है 'नागर'
क्या हँसे विश्व और क्या गाये ?

जन्मगाँठ-एक प्रतिक्रिया

३९

तुमने भेजी है मेरी सालगिरह पर जो दुआ,
शुक्रिया दोस्त, मगर दिल का तकाजा है यही
मुझको दुनिया से बहुत जल्द चले जाना है।

रोज पूरब के झरोखे से किरन फूटेगी।
रोज गुलशन को बहारों की हँसी लूटेगी।
दिन की खुशियों पै मगर शाम के साये होंगे।
चन्द लमहे ये जो अपने हैं पराये होंगे।

सख्त अफसोस इसी दिन के उजाले की तरह
दूर दुनिया की निगाहों से बहुत दूर कहीं
मुझको दुनिया से बहुत जल्द चले जाना है।

आसमाँ रोज सितारों की बलायें लेगा ।
रोज यह चाँद पहाड़ों के तले चमकेगा ।
ख्वाब मचलेंगे बहुत, नींद नशीली होगी ।
आँख खुलते ही मेरी आँख भी गीली होगी ।

सच हुए हैं क्या कभी ख्वाब किसी के अब तक,
फिर मैं ख्वाबों का भरोसा भी करूँ तो क्या है,
मुझको दुनिया से बहुत जल्द चले जाना है ।

तुम जो सावन की घटाओं सी घुमड़ आती हो ।
मन के निर्जन में उमगों सी उमड़ आती हो ।
तुमको मालूम है इस प्यास के मारे मैंने,
पिछले छै-सात बरस कैसे गुजारे मैंने ?

अश्क में भींगते आँचल की कसम है तुमको,
सूखे ओठों को जरा चूम बिदाई दे दो,
मुझको दुनिया से बहुत जल्द चले जाना है ।

शोख नजरें कि बियाबान में पानी जैसे ।
सन्दली बाँह कि सावन की जवानी जैसे ।
सुर्ख ओठों पै अनारों को निचोडा किसने ?
आज फिर चाँद की तसवीर को तोड़ा किसने ?

तुम तो बस मौत की दहशत का उड़ाती हो मजाक,
अपने जाने का इरादा न बदल दूँ मैं कहीं,
मुझको दुनिया से बहुत जल्द चले जाना है ।

यह कयामत की घटाओं सी लटें लहरीली ।
रेख काजल की बहुत स्याह, बहुत जहरीली ।
तुम मेरी रूह मे गुम होके निखर आयी हो ।
मेरे दामन में दुआओं सी बिखर आयी हो ।

पहले मुल्ला की इबादत का न आता था यकीं,
अब तो होता है गुंमा कोई खुदा है भी कहीं,
मुझको दुनिया से बहुत जल्द चले जाना है ।

मैने अपने को मिटा डाला तो पाया है तुम्हें ।
अपने गीतों मे बड़े शौक से गाया है तुम्हें ।
सारी दुनिया में मेहरबान तुम्हीं हो मेरे ।
आखिरी वक्त के ईमान तुम्हीं हो मेरे ।

लो तुम्हें भर के भुजाओं में कसम खाता हूँ
फिर कभी लौट दुबारा न इधर आऊँगा,
मुझको दुनिया से बहुत जल्द चले जाना है ।

तुम भी मुझ जैसी ही मजबूर नजर आती हो ।
पास बैठी हो मगर दूर नजर आती हो ।
मेरे शीशे से मेरी शक्ल चुराता है कोई ।
अपनी बाँहो में मुझे खींचता जाता है कोई ।

अब तुम्हे और परेशाँ न करेगा यह चाँद,
अब तुम्हे सेज की सलवट न सतायेगी कभी,
मुझको दुनिया से बहुत जल्द चले जाना है ।

लो मैं चलता हूँ, मेरा साज सम्हालो तो जरा।
मेरे नग्मे, मेरी आवाज सम्हालो तो जरा।
नये इन्सान के ख्वाबों में मिलूँगा तुमको।
अगली पीढ़ी की किताबों में मिलूँगा तुमको।

सच तो ये है कि हरेक शै पै भी हाबी होकर
मौत शायर के नही पास फटकती फिर भी
मुझको दुनिया से बहुत जल्द चले जाना है।

जवान हसरतें-बूढ़े दिमाग

४०

जब तुझे मेरी बहारो से सरोकार न था
कागज़ी फूल मेरे दिल में खिलाया क्यों था ?
जब तुझे मेरे तरन्नुम का उड़ाना था मज़ाक
मेरा नग्मा मेरी आवाज़ में गाया क्यों था ?

जब तुझे फूल की खुशबू से बहुत नफरत थी
मेरी बगिया को भला प्यार किया क्यों तू ने ?
जब तुझे अपनी ही दुनिया से बँधे रहना था
मेरी दुनिया को गुनहगार किया क्यों तू ने ?

जब तुझे दर्द की तासीर का अन्दाज़ न था
तूने नश्तर से मेरी रूह को छेदा क्यों था ?
जब तुझे खून की सुर्खी से बहुत दहशत थी
मेरे सूखे हुए घावों को कुरेदा क्यों था ?

कितना लाचार बनाया है जवानी ने तेरी
दो कदम राह पै मुश्किल ही से चल पाता हूँ ।
मर्ज कुछ ऐसा तेरे प्यार का हाबी मुझ पर
इतना बीमार हूँ करवट न बदल पाता हूँ ।

तू मेरी उम्र के खँडहर में शमाँ बन चमकी
मैंने समझा था कि बस धूल में हीरा निकला ।
तेरी मुस्कानों का आलम कि खुदा खैर करे
चन्द मनहूस फरेबों का ज़खीरा निकला ।

वह तेरा झूम के चलना कि हवा का थमना
रूठ जाती थी तो खुद मौत भी डर जाती थी ।
मुस्कराती थी जो होठों में दबाकर आंचल
चाँदनी सारे बियाँबा में बिखर जाती थी ।

उफ़, तेरी बोलती नजरों का फडकता जादू
मेरी हर टूटती रग रग मे उतर आया है ।
धर्म ईमान की फितरत से हमेशा के लिए
यूँ तुझे मैंने तो खोकर भी बहुत पाया है ।

याद है अब भी वो खिड़की कि तेरी हसरत ने
अपने आगोश में आने को था मजबूर किया ।
याद है अब भी वो जीना कि जहाँ पर तूने
सिर्फ नजरों से नहीं दिल से मुझे दूर किया ।

याद है अब भी वो आँगन कि सुबह शाम जहाँ
मेरी धड़कन तेरी आहट से थमी होती थी ।
याद है अब भी वो खामोश सा कमरा जिसमें
बस तेरे शोर मचाने की कमी होती थी ।

कितना खुदगर्ज जमाना है जहाँ पर हम सब
झूठी रस्मों के शिकंजों में जड़े होते हैं ।
कितनी जहरीली है वो आबोहवा हम जिसमें–
सीखकर अपने बुजुर्गों से बड़े होते हैं ।

घर के कोने में कहीं बैठ हमारे ये बुजुर्ग
अपने बच्चों की हिफ़ाजत की दुआ करते है ।
क्या पता उनको इबादत के अलावा शायद
उम्र के और तकाज़े भी हुआ करते हैं ।

प्यार क्या चीज़ है शायद उन्हे मालूम नहीं
जो नयी नस्ल को बदनाम किया करते हैं ।
गैर के हाथों वे शादी के बहाने ज़बरन
अपने बच्चों ही को नीलाम किया करते हैं ।

वे नहीं जानते सीने में जहाँ प्यार नहीं
न्यामतें स्वर्ग की पाने से भला क्या होगा ?
वे नहीं जानते ग़र दिल न मिला तो शायद
कुंडली बैठ मिलाने से भला क्या होगा ?

तोड़ देती है नदी अपने किनारे जिस दम
आखिरी वक्त खुदा याद उन्हे आता है।
और तब प्यार की तासीर का मारा बच्चा
खुद उन्हे बाप भी कहते हुए शर्माता है।

रूढ़ियाँ यूंही कुचलती हैं हमारी हसरत,
धर्म ईमान हमें यूँही छला करते हैं।
यूंही बिकती है तवायफ सी हमारी किस्मत
आस्तीनों में जहाँ साँप पला करते है।

तू भी इक ऐसे ही माहौल में पलती है जहाँ
सामने आँख उठाना भी बहुत मुश्किल है।
तुझको सीने से लगाने की जहाँ कौन कहे
खुद तेरी छाँह को पाना भी बहुत मुश्किल है।

ऐ मेरे रूप के सरताज ! बता दुनिया में
रूप जब इतना दिया जिन्दगी फ़ानी क्यों दी ?
मौत के बाद खुदा से मैं कभी पूछूंगा–
तूने शायर ही बनाया तो जवानी क्यों दी ?

वो जवानी जो तेरी सुरमुई चितवन की जगह
झिड़कियाँ 'बास' की खाते ही कटा करती है।
वो जवानी जो तेरी जुल्फ को छूने के बजाय
बोझ फाइल का उठाते ही कटा करती है।

वो जवानी कि जिसे खत के जबाबों में तेरे
डाक डिस्पैच की बस चाह हुआ करती है।
वो जवानी कि जवानी का सहारा जिसका
हर नये माह की तनख्वाह हुआ करती है।

अब कभी बाग में इठलाके जो चलती है हवा
तेरी हर साँस को महसूस किया करता हूँ।
अब जो गुलशन में चटखती है कोई शोख कली–
तेरी मुस्कान वही देख लिया करता हूँ।

अब कोई ख़ार खटकता जो मेरे पाँवो मे,
याद आती है बहुत फर्जअदाई तेरी।
थाम लेता हूँ कोई शाख तो कस जाती है
मेरी कमजोर उँगलियों में कलाई तेरी।

सुरमुई साँझ लिपटती है जो कोहसारों से
ख्वाब बस तेरे ही वादो के नजर आते है।
चाँद जब ले के निकलता है सितारों का जुलूस,
सिलसिले तेरी ही यादों के नजर आते हैं।

अब बता तू ही कि दुनिया को बनाकर दुश्मन
तेरे टूटे हुए वादों को कहाँ ले जाऊँ?
ये तो मुमकिन है तेरी याद कहीं दफना दूँ
अपने रंगीन इरादों को कहाँ ले जाऊँ?

ज़्यादती देख के मौसम की नये फूलों पर
मेरे सीने में अँगारा सा दहक उठता है।
आग जब अपने नशेमन में लगाता हूँ तो
तेरे जूड़े का कोई फूल महक उठता है।

बेसुरे सुर से जो पर्दे ही फटें कानों के
ऐसे टूटे हुए साजों को बदलना होगा।
आने वाला है ज़माना कि बहुत जल्द हमें
अपने इन रीति रिवाजों को बदलना होगा।

हम बुने कौम की किस्मत के यूं ताने बाने,
साफ चादर हो धुली और जहाँ दाग न हों।
नयी पीढ़ी को पनपना है अगर दुनिया में
शर्त है एक कि ये बूढ़े दिल-दिमाग न हों।

आभार

४१

मेरे आराध्य !

अर्चना का निर्माल्य अभी सँजो भी न पाया था कि आरती का मंगल–थाल हाथों से छूट पड़ा। स्नेह–दीप की वर्तिका में अभी ज्योति की प्रथम रश्मि का प्रस्फुटन भी न हुआ था कि निष्ठुर वायु के एक तीव्र झोंके से प्रकाश सहसा विलुप्त हो गया। वन्दना के बोल अभी कंठ से निसृत भी न हुए थे कि मेरी वाचा सहसा अवरुद्ध हो गयी।

अमावस्या के घनान्धकार से आच्छादित मेरे भाग्य–गगन पर तुम किसी मंगल–नक्षत्र से उदित हुए। प्रेरणा की सहस्त्र सहस्त्र किरणों से मेरा मन–प्रांगण दीपमालिका के आलोक सा मुखरित हो उठा। तुम्हारी अलौकिक छवि के सम्मुख मेरा 'अहम्' पराजित हो गया। शारदीय पूर्णचन्द्र की भाँति तुम्हारा वह भव्य मुख–मंडल ही मेरी कल्पना का विराट-वृत्त है। चिर पवित्र जाह्नवी के दुग्ध धवल अंचल सा तुम्हारा वह निष्कलुष यौवन ही मेरी अनुभूति का शृंगार है। साम–ऋचाओं की भाँति तुम्हारे कलकंठ से निसृत वह चित्ताकर्षक बोल ही मेरे गीतों का गुंजन है। चिन्तनलीन दार्शनिकों की भाँति निरन्तर शून्य में भटकते हुए तुम्हारे 'स्वेत स्याम रतनार' लोचनों की गूढ़ता ही मेरी कला का जीवन–दर्शन है। मानसरोवर में चंचल वायु की हिलोर पर सिहरती हुई कमलनाल सी तुम्हारी वह क्षीणकाय काया ही मेरे गीतों की आकृति है। तुम सचमुच मेरे समस्त सृजन में आत्मा बनकर प्रतिष्ठित हुए हो। तुम्हारी देह–श्री और मेरी गीत–श्री- दोनों का यह अद्‌भुत साम्य ही मेरी कला के निरन्तर विकास का मूल रहस्य है।

रात अँधेरी सागर गहरा

जन्म-जन्मान्तर से मैं तो इस विराट कौतूहलमयी सृष्टि में किसी अनाथ अकिंचन भिक्षुक की भांति इतस्तः भटक रहा था कि कीचड़ में पड़े मणिखंड की भांति तुम मुझे दृष्टिगत हुए। तुम्हारी अगाध स्नेहमयी दृष्टिमात्र से मेरी प्रसुप्त चेतना-ग्रंथियों में विद्युत दौड़ गई। तम्हारे माङ्गल्यमय सामीप्य ने मेरी विच्छृंखल विचारधारा को नूतन दिशा प्रदान की। तुम्हारी अजस्त्र प्रेरणा से मेरी विछिन्न प्रतिभा के जीर्ण–शीर्ण पंखों मे पुनर्जीवन संचरित हुआ। तुम्हारे चुम्बकीय स्पर्शमात्र से मेरा कुंठित कवि जीवन गतिशील हुआ। तुम सचमुच सदेह पारस थे जिसका पावन स्पर्श पाकर मेरी चिर–तिरस्कृत लौह अन्तरात्मा स्वर्ण में परिवर्तित हो गयी।

तुम्हारी इन्द्र धनुषी छटा का मेरे अन्तर्मन की तूलिका ने विविध रूपों में चित्रांकन किया है। कभी तुम मुझे महर्षि वाल्मीकि की समस्त करुणा को अपने अन्तस् में केन्द्रीभूत किये दृष्टिगत हुये तो कभी तुम कालिदास की समस्त रसानुभूतियों के व्यापक प्रतिबिम्ब बनकर मेरे ज्ञान–चक्षुओं में समासीन हो गये। कभी तुम मुझे अन्धे सूर के किसी मनलुभावने पद से वृन्दावन के करील कुंजों में गुंजरित होते मिले तो कभी प्रेम–उन्मादिनी मीरा के अक्षय वैराग्य से भक्ति की साक्षात प्रतिमूर्ति प्रतीत हुए। मैंने तुम्हे 'प्रसाद' की 'कामायनी' सा अत्यन्त गूढ़ भी पाया है और 'बच्चन' के गीतों सा सहज सुकुमार भी–तुम्हारा वास्तविक स्वरूप निर्धारित करना मेरी क्षमता से परे है। कदाचित यही कारण है कि आयु की वृद्धि के साथ साथ जीवन जितनी द्रुतगति से सिमटता जाता हैं, मेरी अधिकाधिक जीने की कामना उतनी ही बलवती होती जाती है।

सृष्टि का कदाचित वह सबसे सौभाग्यशाली क्षण रहा होगा जब तुम्हारा इस विराट ब्रह्मांड में अवतरण हुआ होगा। आज जब मैं तुम्हारे वास्तविक स्वरूप की व्याख्या करने बैठा हूँ तो मुझे

लगता है तुम व्याख्या की नहीं केवल अनुभूति की वस्तु हो। शब्द से तुम्हें बाँधने की चेष्टा करता हूँ तो अक्षरों की आकृति ही और हो जाती है। भावनाओं से तुम्हें समेटने का प्रयास करता हूँ तो हृदय विद्रोह कर बैठता है। लय से तुम्हें बाँधने लगता हूँ तो स्वरों का तारतम्य ही टूट जाता है। योगियों सा तुम्हारा ध्रुवध्यान धरता हूँ तो मेरे चक्षु-पटल ही धूमिल हो उठते हैं। अभेद्य अन्धकार में निराश्रित निरुपाय सा जब तुम्हें चीख चीख कर पुकारने लगता हूँ तो मेरी ही कंठध्वनि मेरे अन्तर्मन में प्रति-ध्वनि बन कर वापिस लौट आती है।

मेरी सृष्टि में प्रभात अब भी होता है किन्तु उसकी लालिमा में वह निखार नहीं जो तुम्हारे रक्तिम आवरण में व्याप्त है। सन्ध्या अब भी मेरी अटारी पर कामनाओं के दीपक टिमटिमा जाती है किन्तु उसकी श्यामलता में वह आकर्षण कहाँ जो तुम्हारी वर्तुल केशराशि में निहित है। बसन्त अब भी यदाकदा मेरी बगिया में अनमने मन से चक्कर लगा जाता है किन्तु स्वरकिन्नरी श्यामा के कल-कूजन के अभाव में वह बिना मेरी आकांक्षा के पुष्पों को खिलाये उलटे पाँवों वापिस लौट जाता है। वर्षा की झिमिर झिमिर अब भी मेरे शुष्क आँगन को गीला कर जाती है किन्तु उसकी बूँदों में वह शीतलता नहीं जो तुम्हारी अश्रुधारा में आकंठ डूब कर नहाने से प्राप्त होती थी। मैं जो कुछ हूँ वह तुम नहीं हो सकते, तुम जो कुछ हो वह मैं नहीं हो सकता और हम दोनों मिलकर जो कुछ हैं, वह संसार नहीं हो सकता है।

जीवन संग्राम में परिस्थितियों से जूझते जूझते मेरी काया शिथिल हो चली है। दुख दैन्य और अभावों का दुलराया हुआ मेरा व्यक्तित्व अनगिन अवरोधो एवं कुंठाओं के समक्ष सदैव अविचल और अपराजेय रहा है। तुम्हारी मर्मभेदिनी सुधियों से आक्रान्त रात्रि का यह तृतीय प्रहर आज मेरे अभाव भरे जीवन में व्यथा से बोझिल किसी बिदा-गीत की अधूरी कड़ी सा ठहर ठहर

कर आगे बढ़ रहा है। वातावरण में चारों ओर स्मशान जैसी नीरवता व्याप्त है। मेरा यह एकान्त कक्ष मृत्युदंड प्राप्त बन्दी की काल-कोठरी सा भयानक रूप से मुझे भयभीत कर रहा है। शैया के सिरहाने तैलरिक्त माटी के दीवट की लौ सीधी रेखा की आकृति में किसी दूधिया माँग में शीघ्र ही पूरे जाने वाले सिन्दूर सी चमक रही है। बड़ी कठिनाई से मैं पूरी साँस खींचता हूँ तो कलेजे में कोई फाँस रह रह कर चुभ जाती है। काँपती उँगलियों से लेखनी उठाता हूँ तो कलाई में सूजन सी उतरती जान पड़ती है। मेरे वे आँसू जिन्हें तुम कभी मानसरोवर के मोती कह कर पुचकारा करते थे, अब पलकों की कोर पर एकबारगी सब के सब सूख गये हैं केवल चिर-बिदा की इस पुण्यमयी बेला में तुम्हारे आभारों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने के हेतु मेरे पास एक फीकी मुसकान शेष रह गयी है।

भविष्य कुछ अधिक आकर्षक नहीं प्रतीत होता किन्तु इतना विश्वास रखना कि जब तक मेरी उँगलियों मे लेखनी उठाने की क्षमता है, जब तक मेरे कंठ में ध्वनि, ध्वनि में लय, लय में स्वर-जाल, और स्वरजाल में तुम हो, जीवन-नाट्य की यवनिका के चिर-पटाक्षेप के पूर्व ही मैं तुम्हें अपने गीतों में गा-गाकर अमर कर जाऊँगा।

रोम-रोम से तुम्हारे प्रति आभार प्रकट करता हुआ—

तुम्हारा ही
कवि